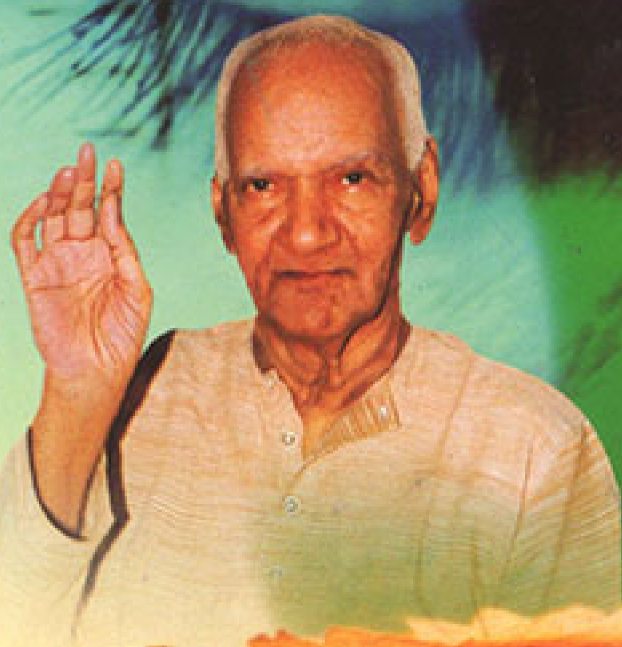
गायत्री परिवार, युग निर्माण योजना का

साधना–आंदोलन

सबके लिए सुलभ

उपासना-साधना

(संशोधित एवं संवर्द्धित संस्करण)





साधना-आन्दोलन पर एक दृष्टि

आज की विश्वव्यापी समस्या

संसार को त्रस्त कर रही वर्तमान परिस्थितियों से हम सभी अवगत हैं। चारों ओर शोषण, अत्याचार, अनाचार का एकछत्र राज्य है। प्रत्येक व्यक्ति अशान्त और असन्तुलित है-अत्याचारी भी और पीड़ित भी। प्रकृति और मानव दोनों की उग्रता चरम सीमा पर है। इन उग्रताओं ने व्यक्ति के विचार और व्यवहार बदल डाले हैं, मानव-मूल्यों को लुप्तप्राय कर दिया है और जीवन जीने के उद्देश्यों को ही तहस-नहस कर डाला है। लगता है कि हम सब जलते हुए नरक में जी रहे हैं।

समस्या के निराकरण का उपाय-

इस भयावह समस्या को सुलझाने के प्रयास किये तो जा रहे हैं, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों की स्वयंसेवी संस्थाएँ निरन्तर प्रयत्न तो कर रही हैं, पर कोई स्थायी समाधान अभी तक निकल नहीं पाया है। मानव की विनाशकारी वृत्तियाँ अजेय सिद्ध हो रही हैं।

इन विपरीत और कठिन परिस्थितियों में भी युग के निर्माण के लिए संकल्पित हमारा मिशन दृढ़ आस्था लिए इस समस्या को सुलझाने में निरन्तर कार्यरत है। हमारा सोच और कार्य-पद्धति अन्य संस्थाओं से भिन्न है। हमारी मान्यता है कि स्थूल समस्याओं की जड़ मानस में होती है। अतः जड़ का, मूल कारण का इलाज करना चाहिये। इसलिए यदि प्रकृति की उग्रता का और विश्वव्यापी समस्याओं का मूल कारण मानव मन की उग्रता है, तो **मानव मन का पुनर्निर्माण** ही मानव जाति के उज्ज्वल भविष्य का एकमात्र अमोघ उपाय हो सकता है। स्पष्ट है कि ऐसा पुनर्निर्माण मनोवैज्ञानिक-आध्यात्मिक प्रक्रियाओं द्वारा ही संभव है।

साधना-आन्दोलन की आवश्यकता

कोई अवांछनीय स्थिति व्यापक रूप से त्रास पहुँचा रही हो, तब उसके विरुद्ध एकजुट होना और सामना करने के लिए समर्थ शक्ति को एकत्रित करना व प्रयोग करना, अर्थात् 'आन्दोलन' करना आवश्यक हो जाता है। वर्तमान विश्वव्यापी समस्या से निपटने के लिए भी साधना-आन्दोलन जैसे प्रबल जागरण अभियान की आवश्यकता अनुभव हुई है। इस नब्ज को युग निर्माण मिशन ने

के लक्ष्य हैं ... ''उपासना-साधना- आराधना के द्वारा (१) एक-एक मानव मन को सन्तुलन में लाना, (२) मानव मन को सृजनात्मक दिशा में क्रियाशील करना और (३) इन दो जन-अभियानों का व्यापक प्रसार कर विश्व-मानव के मन की उग्रता को शान्त करना, उसे सृजन- सहयोग में प्रयुक्त करना।''

हमारी इस मान्यता से भी आप संभवत: सहमत होंगे कि मानव मन के पुनर्निर्माण जैसा कठिन व अद्‌भुत कार्य केवल **वास्तविक धर्म** ही कर सकता है। **वास्तविक धर्म याने ईश्वर की तीन आज्ञाओं का पालन..... पवित्र विचार, सबके हित का भाव, और कर्त्तव्य-परायणता।** इसीलिये इन ईश्वरीय आज्ञाओं की विश्वव्यापी पूर्ति करने का महान् उद्देश्य सामने रखकर युग-निर्माण मिशन ने वसन्त पर्व २००१ से सात आन्दोलनों को आरंभ करने की घोषणा की है। इनमें **साधना-आन्दोलन** प्रथम स्थान पर है, क्योंकि यह अपने आप में तो पूर्ण है ही, शेष छ: आन्दोलनों का भी पोषण करने की सामर्थ्य रखता है।

''साधना'' का व्यापक अर्थ-

सामान्य रूप से 'साधना' का अर्थ 'साधकर रखना' होता है। आध्यात्मिक क्षेत्र में इसका अर्थ ''जीवन को साध कर रखना'' है। मनुष्य के विचार, भाव और कर्म ही तो हैं, जो उसके अच्छे-बुरे संस्कारों का और उस अनुसार अच्छे-बुरे जीवन का निर्माण करते हैं। इसलिये इन तीन के स्तर को नीचे न गिरने देना ही जीवन-साधना है।

एक डण्डे को सीधा खड़ा रखना हो, तो उसे पकड़े रखना आवश्यक होता है। डण्डा मजबूत हाथों में नहीं होगा, तो पृथ्वी के आकर्षण के कारण गिर जाएगा। इसी प्रकार हम साधारण मानवों के विचार, भाव और कर्म को किसी समर्थ का सहारा न मिले, तो तृष्णा-वासना के सांसारिक आकर्षणों के कारण वे भी पशु-स्तर पर गिर जाएँगे। इन पतनकारी आकर्षणों से बचाने वाली समर्थ शक्ति ईश्वर ही है। इसलिए साधना से पहले उपासना की, अर्थात् ईश्वर की सर्वव्यापकता और उनके कर्मफल के नियम को अनुभव करने की आवश्यकता है। अर्थात् पहली सीढ़ी उपासना की हो, तब दूसरी सीढ़ी 'साधना' की हो पाएगी। 'उपासना' को आधार बनाकर यदि स्वच्छ और संतुलित जीवन जीने की 'साधना' करें, तो वह सहज ही सध जाती है।

कि जिस प्रकार उपासना-साधना के द्वारा अपने जीवन को उजले मार्ग पर ले जा रहे हैं, वैसे ही अपने परिचितों को भी इस मार्ग पर चलाने का प्रयास करें। अपने दीप से दूसरे दीप भी जलाएँ। यह परोपकारी भाव और यह सेवा-साधना ईश्वर की 'आराधना' कहलाती है। यह साधना की सर्वोच्च स्थिति है। इस प्रकार कुल मिलाकर 'साधना' का व्यापक अर्थ उपासना-साधना-आराधना की त्रिपुटी है।

साधना-आन्दोलन के ऐसे त्रि-आयामी प्रसार से निश्चय ही विश्व स्तर पर मानव-मन की उग्रता को शांत करने का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकेगा। मनुष्य के भीतर सोए देवता को जगाने और धरती पर स्वर्ग उतारने की यह विधा पहले भी सार्थक और सफल रही है। विश्वास करना चाहिये कि ऋषि-प्रणीत यह योजना अब भी सफल होगी।

पूरा संसार कितना बड़ा है, इसकी चिन्ता हम न करें। यह ऋषि सत्ता की चिंता का विषय है। अपने परिवार-जनों, और प्रभाव क्षेत्र में आने वाले व्यक्तियों तक ही हमारा-आपका संसार है। अत: आपसे अपेक्षा करते हैं कि साधना की इन तीन सीढ़ियों को क्रमश: पार करते हुए आप ईश्वरीय प्रकाश की ओर स्वयं तो बढ़ें ही, अपने इस संसार को भी साधना के आलोक से जगमगाने की सेवा करें।

ईश्वर हम सब को इस श्रेष्ठ मार्ग पर चलने की प्रेरणा दें।

कार्यकर्त्ताओं के लिए विशेष ज्ञातव्य

पूज्य गुरुदेव कहते हैं- "मनुष्य महान् है और उससे भी महान् है उसका सृजेता-परमात्मा। जो परमात्मा की सर्वसमर्थ-सर्वहितकारी चेतना से सम्पर्क बनाकर रखेगा, वह अपने जीवन में महानता विकसित करने में सफल हो जाएगा। उसकी दिव्य सामर्थ्य बढ़ती जाएगी। लौकिक एवं पारलौकिक जीवन के मार्ग में आने वाली हर बाधा छोटी सिद्ध होगी। हर लक्ष्य सुगम लगने लगेगा।"

पूज्य गुरुदेव के इस मार्गदर्शन का उपयोग कार्यकर्ता भाई-बहिन निम्नांकित उपायों को अपना कर करें, तो उन्हें साधना सम्बन्धी प्रचार-प्रसार कार्यों में विशेष सफलता मिल सकेगी :-

(१) हमारा लक्ष्य है कि हम स्वयं को, तथा अपने प्रभाव-क्षेत्र में आने वाले व्यक्तियों को आदर्शों के अनुरूप जीवन जीने की प्रेरणा निरन्तर देते रहें।

क्रियाकलाप चुनें, उनकी उपयोगिता की जाँच पहले कर लें। आप स्वयं से यह प्रश्न करें, 'क्या मेरी यह चर्चा व क्रियाकलाप लोगों के चरित्र या चिन्तन या व्यवहार को ऊँचा उठाने में सहायक हो सकेंगे? क्या उन्हें आदर्शों के अनुरूप जीवन जीने की प्रेरणा दे सकेंगे?' उत्तर 'हाँ' में मिले, तो उन्हें अवश्य करें। 'नहीं' में मिले तो अपने चर्चा-क्रियाकलाप में ऐसे परिवर्तन कर लें कि लक्ष्य पूरा हो सके।

(२) साधना-आन्दोलन के लिए हमारा नारा है- "**सबको सद्बुद्धि, सबको उज्ज्वल भविष्य।**" उपयुक्त अवसर पर इस नारे का प्रसारण किया करें।

(३) प्रचार-प्रसार के समय आप ऋषि-सत्ता के इस आश्वासन को जन-जन तक पहुँचाया करें, "**साधना कीजिये। अनिष्टों से सुरक्षा पाइये। अपने सुख-सौभाग्य की वृद्धि कीजिये।**"

(४) उपासना-साधना सम्बन्धी जो सूत्र इस पुस्तिका में दिये गये हैं, वे विवेक-सम्मत हैं और विज्ञान-सम्मत भी। अब आपको इन सूत्रों को इस कुशलता से समाज को भिन्न-भिन्न वर्गों के नर-नारियों तक पहुँचाना है कि **उन्हें लगे कि ये सूत्र उनके ही धर्म-सम्प्रदाय के हैं।**

(५) साधना के संकल्प करा कर ही आप अपना कर्त्तव्य पूरा हुआ न मान लें। नए साधकों से लगातार सम्पर्क बनाये रखें। उन्हें प्रोत्साहित करें, मार्गदर्शन किया करें। उन्हें विकसित करना व्यक्तिगत जिम्मेदारी मानें। आपने जो समयदान किया है, उसे इस साधना-आन्दोलन में निष्ठापूर्वक लगाएँ।

(६) इस आन्दोलन में **एकरूपता को बनाए रखना** बड़ी चुनौती है। आप इस चुनौती को स्वीकार करें। इस हेतु साधना-पदों में जैसी क्रिया-पद्धति और क्रिया के साथ अपनायी जाने वाली मानसिकता बतायी गयी है, उसे ही आप समझाएँ-सिखाएँ।

(७) बच्चे तथा अशिक्षित व्यक्ति या ऐसे व्यक्ति जिन्हें उपासना-साधना में रुचि-श्रद्धा प्राय: नहीं है, या जिन्होंने उपासना- साधना कभी की ही नहीं है, ऐसे नए साधकों को साधना के सभी पद एक ही बार में मत सिखाइये। **उन्हें केवल एक पद की विधि स्वयं करके सिखाइये। साथ ही, इस विधि को करते समय जो विचार और भाव रहना चाहिये, वे उन्हें समझाइये।** एक बार में, बस इतना ही अभ्यास सिखाइये और कराइये।

प्रकार सिखाइये-कराइये। रुचि और सीखने की क्षमता के अनुसार ही प्रशिक्षण दीजिये। सरल से सरल भाषा का उपयोग किया कीजिये।

(८) उपासना-साधना के प्रत्येक कर्मकाण्ड के संग उससे सम्बन्धित सत्प्रेरणा या सद्भावना जुड़ी हुई है। अत:कर्मकाण्ड तो सिखाएँ ही, उससे जुड़ी सत्प्रेरणा-सद्भावना भी आप अवश्य बताएँ, और प्रयोग में लाना सिखाएँ। ''साधना का अर्थ जीवन-साधना है'' इस वाक्य का अर्थ और महत्त्व लोगों की समझ में तभी आ सकेगा, जब आप इस निर्धारित क्रम से प्रशिक्षण देंगे। यथा- **(१) कर्मकाण्ड, (२) उससे जुड़ी सत्प्रेरणा (३) दिनचर्या में सत्प्रेरणा का पालन।** अत: इस क्रम का ध्यान रखें।

(९) अपने प्रत्येक उद्बोधन या प्रशिक्षण में आप **(१) स्वाध्याय (२) संयम (३) सेवा** का महत्त्व अवश्य बताया करें, और इनके प्रति आस्था उत्पन्न किया करें। जैसे कि यह समझाएँ कि -

(क) नित्य स्वाध्याय करने से उपासना में चमक आती है।

(ख) संयम का पालन करने से उपासना बड़ी प्रभावशाली बन जाती है।

(ग) सेवा के संग जुड़ी उपासना ईश्वर की निकटता का अनुभव कराती है।

(१०) कुल मिलाकर यों कहें कि इस साधना-आन्दोलन का उद्देश्य **''जन-जन को जीवन जीने की कला' का प्रशिक्षण देना और अभ्यास कराना है।''**

आप इस उद्देश्य का सदा ध्यान में रखें।

अपनी मान्यताएँ ठीक कर लें

उपासना-साधना के बारे में बड़ी ही भ्रान्त धारणाएँ आधुनिक शिक्षितों में व्याप्त हैं। पूजा-पाठ को नाकारा लोगों के द्वारा किया जाने वाला कृत्य माना जाने लगा है। यह मान्यता बन गई है कि पूजा-उपासना करने वाले स्वयं को समर्थ और क्रियाशील बनाने के बजाय भगवान् के सामने केवल इसीलिये गिड़गिड़ाते रहते हैं कि वे उनकी 'मनोकामना' पूरी कर दें। इस भ्रान्ति के कारण बहुसंख्यक विचारशील और तर्कप्रिय लोग उपासना-साधना की उपेक्षा करते हैं।

यह धारणा वास्तविकता पर आधारित नहीं है। यदि उपासना-साधना के सही अर्थ जान लें, फिर उचित तर्क और सही दृष्टिकोण से विचार करें,

बड़ा तो कोई प्रमाण नहीं होता, है न? तो आप विश्व भर के उन महापुरुषों और महान् महिलाओं के जीवन पर दृष्टि घुमाइये, जिन्होंने अपने-अपने ढंग की साधना-शक्ति से संसार की दिशा बदल डाली। वैदिक-पौराणिक काल के ऋषि, बुद्ध, महावीर, आद्यशंकराचार्य, ईसा, मुहम्मद, नानक देव और गाँधी ने; गार्गी, मदालसा, हेलेन कीलर और मैडेम क्यूरी ने अपने-अपने समय में साधना-पुरुषार्थ के बल पर लोकहित के ऐसे कार्य कर दिखाए, जिन्हें लोग असम्भव मानते थे। अतः उपासना-साधना की उपेक्षा करना किसी प्रकार भी उचित नहीं है। इस अद्भुत विज्ञान के **तर्कसंगत स्वरूप** को जानने का प्रयास करना चाहिये, और उसे अपना कर अपने जीवन को भी ऊँचे स्तर का व गरिमामय बनाना चाहिये।

गायत्री परिवार-युग निर्माण योजना के **साधना-आन्दोलन** के अन्तर्गत लोकमंगल का ऐसा ही प्रयास किया जा रहा है। युगऋषि पं. श्रीराम शर्मा जी आचार्य की कृपा-स्वरूप इस संगठन को इस प्रयास में पर्याप्त सफलता भी प्राप्त हुई है। उपासना-साधना के ऐसे सूत्र विकसित और प्रयुक्त किये जा सके हैं, जो विज्ञान और विवेक दोनों की कसौटी पर खरे उतरते हैं। यह ऐसे सूत्र हैं, जो सभी धर्मों और विश्वासों में एक समान पाये जाते हैं। अतः इन्हें किसी भी धर्म-सम्प्रदाय में आस्था रखने वाले नर-नारी बिना झिझक अपना सकते और लाभ उठा सकते हैं।

इसलिये हम सभी धर्मों व मत-मतान्तरों के विचारशीलों, प्रतिभावानों से आग्रह करते हैं कि वे प्रचलित भ्रान्तियों से मुक्त हों, अपनी असंगत मान्यताओं में सुधार कर लें, और आगे प्रस्तुत किये जा रहे उपासना-साधना के सार्वभौम जीवन सूत्रों को अपना कर उनकी व्यावहारिकता की स्वयं परीक्षा करें।

समझदारी की बात

स्वस्थ रहने या धन कमाने या अपनी अन्य समस्याएँ निपटाने के लिये भगवान् ने हमें पर्याप्त शरीर बल और बुद्धि बल पहले से ही दे रखे हैं। अतः इनका समुचित उपयोग करके हमें अपनी स्थूल आवश्यकताएँ पूरी कर लेना चाहिये। सामान्यतः सब ऐसा ही करते हैं। यदि कार्य बड़ा या कठिन हो, तो दूसरों का भी सहयोग लिया जा सकता है। ऐसे कार्यों के लिए भगवान् से सहायता की प्रार्थना करना अनुचित तो नहीं है; **पर साथ में यह समझदारी भी बनाए रखना चाहिये कि माया-मोह की पूर्ति करने की आपकी प्रार्थना यदि**

नहीं जाएँगे। अपनी प्रार्थना-उपासना बन्द नहीं कर देंगे।

अपने पढ़ा या सुना होगा कि एक बार भक्त शिरोमणि नारद ने भगवान् से प्रार्थना की कि वे उन्हें सुन्दर रूप वाला बना दें, जिससे कि वे विश्वमोहिनी से ब्याह रचा सकें। 'मेरा प्रिय नारद भक्ति-मार्ग से भटक जाएगा' ऐसा जानकर भगवान् ने कहा "तुम्हारे लिए जो उचित होगा वह करेंगे।" और भगवान् ने उन्हें सुन्दर रूप न देकर उनकी आसक्ति का निवारण कर दिया।

इसलिये आपका मन न माने, तो अपनी मनोकामना भले ही भगवान् से कहा करें, पर यदि वह पूरी न हो, तो बुरा भी न मानें। वे ही जानते हैं कि उनके भक्त की भलाई किसमें है। अतः यह निर्णय आप उन्हीं पर छोड़ दिया करें।

प्रार्थना-उपासना का उद्देश्य

यदि आपने उपरोक्त समझदारी अपने मन में बिठा ली, तो समझिये कि भगवान की ओर, अर्थात उज्ज्वल जीवन की ओर बढ़ने में जो सबसे बड़ा अटकाव आता है, उसे आपने पार कर लिया। 'मेरी मनोकामना पूरी हो' इस उधेड़बुन में उलझे रहने के कारण ही तो मन शान्त नहीं रह पाता। भगवान के प्रति श्रद्धा और अपनेपन की भावना भी नहीं उभर पाती। इसलिये इस तथ्य को भली प्रकार समझ लेना चाहिये कि भगवान की स्तुति-प्रशंसा गा कर मनोकामना पूरी कर देने की खुशामद करने का उपासना से कोई संबंध नहीं होता।

तो फिर प्रार्थना-उपासना किसलिये की जाती है?

भगवान ने "दैवी चेतना" का अमूल्य उपहार हमें जन्म के समय से ही दे रखा है। पर यह सोयी ही पड़ी रहती है। इस दिव्य चेतना को जगाने के लिये प्रार्थना-उपासना की जाती है। प्रार्थना-उपासना इसलिये भी की जाती है कि हमारा मन पवित्र बने। हमारे हृदय में उदारता पनपे। हम दूसरों की सेवा करने के लिये सदैव उत्साह से भरे रहें। मनुष्य-जीवन की यह चार सबसे बड़ी उपलब्धियाँ हैं। इन उपलब्धियों के सत्परिणामों पर आप जरा ध्यान दीजिये:-

(१) भीतर उपजते रहने वाले गन्दे विचार क्रमशः कम होने लगते हैं, तो शरीर से होने वाले पाप कर्म भी ढीले पड़ते जाते हैं।

तो स्वभाव-संस्कार भी अच्छे साँचे में ढलने लगते हैं।

(३) भगवान के प्रति श्रद्धा और आत्मीयता विकसित होती है,
तो जीवात्मा भी उज्ज्वल होता है, आनन्द की अनुभूति करता है।

(४) सांसारिक लाभ भी होते हैं। उपासक में सात्विकता बढ़ती है,
तो परिवार-जनों में भी सौम्य-भाव आता है।
बच्चों में आज्ञाकारिता व अन्य अच्छे संस्कारों का विकास होता है।

अत: भगवान को अपना सबसे बड़ा शुभचिन्तक और आत्मीय मानकर नित्य उपासना किया कीजिये। सद्भाव और सदबुद्धि देने की प्रार्थना किया कीजिये। ऐसी निर्मल इच्छाएँ भगवान अवश्य पूरी करते हैं। किसी की भी उपासना निष्फल नहीं जाती, फिर आपकी ही भला क्यों जाएगी?

उपासना जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है

आप आस्तिक वृत्ति के व्यक्ति हैं, इस कारण ही आपने इस पुस्तिका को जिज्ञासावश अपने हाथ में लिया है। इसलिये अब इतना ही स्पष्ट करने का यहाँ प्रयत्न है कि उपासना हम सबके जीवन की **अनिवार्य आवश्यकता क्यों है।**

(१) अनिवार्य आवश्यकता इसलिये है कि उपासना के बिना हम यह भूलते चले जाते हैं कि ईश्वर ने हमें मानव-योनि में जन्म क्यों दिया है। ऐसा उत्कृष्ट जीवन देने में आखिर उसका उद्देश्य क्या है। इन तथ्यों को भूल जाने के कारण ही तो हम सही रास्ते से बार-बार भटक जाते हैं, और उन रास्तों को पकड़ लेते हैं जो हमें पशुओं जैसे जीवन की ओर ले जाते हैं।

इस भटकन में हम अपना यह मूल्यवान मानव-जीवन न गँवा दें, इसलिये सही राह दिखाने में जो समर्थ है उस उपासना को, ईश्वर के निकट बैठने को, हमें अनिवार्य मानना चाहिये। हमें नित्य उपासना करना चाहिये।

(२) मानव-जन्म पाने का अर्थ केवल इतना ही नहीं है कि हमें मानव का शरीर मिला है। इस मूल्यवान शरीर से बड़े महत्व वाले कार्य भी कर सकें, इस हेतु भगवान ने उसमें विलक्षण क्षमताओं से भरे हुए मन-बुद्धि, और भाव जैसी अद्भुत सम्पदा उपजाने वाला हृदय नामक उपकरण भी दिये हैं। अन्य जीवधारियों के पास यह उत्कृष्ट साधन नहीं हैं। इसलिये वे बेचारे किसी प्रकार पेट भर कर जिन्दा रहने

हम सोचें कि अक्षम जीवधारियों के समान क्या हम भी केवल पेट और प्रजनन में अपना जीवन बिता देंगे? अधिक से अधिक धन कमाने और पद-सत्ता पाने में, अपने स्वार्थ और अहं को तृप्त करने में प्रभु के दिये इन विलक्षण उपहारों को झोंक देने के लिये ही क्या हमने यह मानव-जन्म पाया है? हमें इन प्रश्नों पर बार-बार और गम्भीर विचार करना चाहिये।

पर प्रश्न यह है कि इन बातों पर विचार करने, अपनी भूल पहचानने, अपनी क्षमताओं का सही उपयोग जानने के लिए- कुल मिलाकर, मानव जन्म दिये जाने का भगवान का उद्देश्य समझ लेने के लिये कौन हमें बार-बार कुरेदा करे और प्रेरित किया करे? हम दो चार बार में प्राय: नहीं मानते। तो नित्य कौन हमें प्यार से या झिड़क कर समझाए?

उपासना ऐसा करने में समर्थ है। इसलिये उज्ज्वल जीवन की ओर कदम बढ़ाने के लिये उपासना की अनिवार्य आवश्यकता है।

(३) देखो तो, यह उपासना कैसी-कैसी विलक्षण प्रेरणाएँ देती है! "ॐ नमः शिवाय" मन्त्र विनम्र और कल्याणकारी जीवन जीने के लिये उत्साह बढ़ा रहा है। "णमो अरिहन्ताणम्" काम-क्रोधादि शत्रुओं को नष्ट करने के लिये आह्वान कर रहा है। सिक्ख धर्म के "शबद" और ईसाई धर्म की "साम" प्रार्थनाएँ जीवन के रूखेपन को ईश्वरीय मधुरता से सींच रही हैं। इनसे प्राप्त होने वाली पवित्रता और शान्ति जलते मन पर शीतल मलहम लगाती है, तो नीरस हृदय में भी कृतज्ञता और उमंग पनपने लगती हैं।

इसीलिये तो, जो जीवन को उल्लास की राह बता दे- उस पर चला दे, ऐसी प्रार्थना और उपासना हमारे जीवन के लिये अपरिहार्य है।

(४) अत: जिस प्रकार गन्दगी और हानिकारक कीटों से अपने मकान को बचाने के लिये, और उसकी सुव्यवस्था से प्रसन्नता पाने के लिये हम उसमें नित्य बुहारी लगाते हैं उसे स्वच्छ- सुगन्धित रखते हैं, वैसे ही अपने मन में उठने वाले विचारों की गन्दगी को और हृदय में से उमड़ने वाली दुर्भावों की दुर्गन्ध को हटाने के लिये, मन और हृदय को ईश्वर की पवित्रता व सुगन्ध से भरने के लिये हमें नित्य उपासना करने का निश्चय अब कर ही लेना चाहिये।

विधि-विधान को शिथिल भी किया जा सकता है

पहले-पहल लिखना सीखने वाले बच्चे अ-आ-इ-ई लिखने का अभ्यास करते है और कभी खड़ी रेखा छोड़ देते हैं कभी आड़ी रेखा तो शिक्षक उसे गलत नहीं मानते, क्योंकि अक्षरों का स्वरूप उनमें भी झलकता है। शिक्षक जानते हैं कि **नित्य अभ्यास** के द्वारा बच्चे धीरे-धीरे प्रगति करते जाएँगे, बिल्कुल सही व सुन्दर अक्षर लिखने लगेंगे, फिर शब्द व वाक्य भी लिखने में समर्थ हो जाएँगे।

प्रत्येक नयी बात सीखने की यही प्रक्रिया है। इसलिये प्रारम्भ से ही कड़े नियम लागू नहीं किये जाते। नए सीखने वाले को बच्चे के समान मानकर नियमों को शिथिल करना आवश्यक होता है, तो सिखाने वाले ऐसा करने में हिचकिचाते नहीं। इसी प्रकार जो पहले-पहल उपासना करना सीखना चाहते हैं, अथवा जो अपनी नौकरी-व्यवसाय में अधिक व्यस्त रहने के कारण उपासना में अधिक समय नहीं लगा पाते, वे इसी श्रेणी में आते हैं। इसलिये उन्हें प्रारम्भ में उपासना के लम्बे विधि-विधान से मुक्त रखना बिल्कुल उचित है।

उपासना के विधि-विधान में चार नियम प्रमुख हैं, यथा-(१) निश्चित समय पर (२) पवित्र स्थान पर (३) शुद्ध शरीर एवं शुद्ध वस्त्र पहन कर (४) षटकर्म व देवपूजन करें। फिर उपासना करें। पर प्रारम्भिक उपासकों और व्यस्त व्यक्तियों के लिये इन तथा अन्य नियमों को निभाना प्राय: सम्भव नहीं होता। अत: वे भी उपासना जैसी अनिवार्य आवश्यकता को पूरा कर सकें, इस हेतु उन्हें उपासना का छोटा और सहज मार्ग बताना चाहिये। तभी वे आगे बढ़ सकेंगे।

उपासना का सहज मार्ग

उपासना को सहज-सुलभ बनाने के कुछ सुझाव नीचे दिये जा रहे हैं। उपासना के समय को कम करने में व उसे अधिक सुविधापूर्ण बनाने में तो वे सहायक हैं ही, साथ ही उपासना के मूल तत्त्वों को भी जोड़े रखते हैं। इसलिये किसान-व्यापारी अत्यन्त व्यस्त महिलाएँ एवं पुरुष-तथा प्रारंभिक उपासक, उपरोक्त चार नियम-अनुशासनों को इस प्रकार शिथिल कर लिया करें :-

(१) समय बद्धता- निश्चित समय का बंधन अभी ढीला रखें। आपको जब भी फुर्सत के और चिन्ता व तनाव से मुक्त ५-१० मिनिट या अधिक समय मिले,

(२) स्थान की पवित्रता - घर में-खेत की मेड़ पर-दूकान या कार्यालय में-यात्रा में, या धरती, बैंच, कुर्सी, बिस्तर जो भी उपलब्ध हो, उसी पर बैठकर उपासना कर लिया करें। स्थान विशेष का नियम पालन प्रारम्भ में स्थगित रखें।

(३) शारीरिक शुद्धता- सम्भव हो तो स्नान करने, धुले वस्त्र पहनने के बाद उपासना करें। न हो, तो हाथ-मुँह आदि धो लें और उपासना कर लें।

(४) षट्कर्म व देवपूजन- निःसंदेह षट्कर्म-देवपूजन की क्रियाएँ मन को शांत बनाती व एकाग्र करती हैं, ईश्वर का चिन्तन करने में भी सहायता देती हैं। पर इन क्रियाओं के लिए अधिक समय व सामग्री लगती है। अतः इनके स्थान पर आप उपासना आरंभ करने से पहले १-२ मिनिट लगाकर यह दो प्रयास किया करें:-

(i) अपने मन को शान्त कीजिये।

(ii) ईश्वर के प्रति आत्मीयता के भाव उपजाइये।

फिर प्रार्थना-उपासना कीजिये। यह दो प्रयास किस प्रकार करें, इसकी विधि आगे दी जा रही है। इस प्रकार उपरोक्त चार सुविधाओं का उपयोग कर आप अपनी उपासना को सहज सुलभ और कम समय लेने वाली बना सकते हैं।

इस पुस्तिका में
उपासना की विधि-व्यवस्था

सुविधा की दृष्टि से व स्तर की दृष्टि से भी इस पुस्तिका को दो खण्डों में बाँटा गया है। प्रथम खण्ड में उपासना का सरलतम स्वरूप दिया गया है, और द्वितीय खण्ड में उपासना-साधना का विकसित स्वरूप दिया गया है।

इसलिए आप पहले प्रथम खण्ड में बताई गयी उपासना विधि का उपयोग करें। जब प्रथम खण्ड का अभ्यास पक्का हो जाए और उपासना में मन लगने लगे, तब आप दूसरे खण्ड में बताई गयी पद्धति से अपनी उपासना को आगे बढ़ाएँ। जिन्हें उपासना-साधना का अनुभव है, वे भी द्वितीय खण्ड से आरम्भ करें।

इस प्रकार एक-एक उपासना खण्ड को क्रमशः साधते हुए जब आप अपने विचार और व्यवहार को भी साधने लगेंगे, तब आपकी उपासना 'साधना' के रूप में विकसित होने लगेगी। मानव -जीवन धारण करने का उद्देश्य अनुभव होने लगेगा और "जीवन जीने की कला" अभ्यास में आने लगेगी।

अतः उज्ज्वल जीवन की दिशा में कदम बढ़ाइये। प्रथम खण्ड

प्रथम खण्ड

उपासना –

वे आस्तिक व्यक्ति जिन्होंने कभी उपासना नहीं की है, पर जो अब आरम्भ करना चाहते हैं और वे व्यक्ति जो बहुत व्यस्त रहने के कारण उपासना के लिए अधिक समय नहीं लगा सकते, उनके लिए इस प्रथम खण्ड में प्रस्तुत की जा रही उपासना-पद्धति उपयोगी होगी। यह सरल है, कम समय लेती है और प्रभावशाली भी है।

उपासना एक पद्धति है जिसके द्वारा "ईश्वर के निकट बैठना" सम्भव होता है। बर्फ के निकट बैठने से शीतलता अनुभव होती है। भट्ठी के पास बैठने से गर्मी अनुभव होती है। ऐसे ही ईश्वर समस्त श्रेष्ठ गुणों के भण्डार हैं। उनके निकट यदि सचमुच बैठें तो अन्तःकरण में श्रेष्ठ विचार और भाव भर जाने का अनुभव होना चाहिए। इसे ही प्रभावी और सार्थक उपासना कहते हैं। इस प्रथम खण्ड में उपासना की ऐसी ही विधि-व्यवस्था प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। आप इसे ध्यान पूर्वक पढ़ें, समझें, और बताए गये विधि-अनुशासनों के साथ अभ्यास करें।

प्रथम खण्ड के उपासना-कार्यक्रम

प्रथम खण्ड के इस उपासना कार्यक्रम के ५ पद हैं। इनके नाम हैं- **१. सुखासन २. शान्त मन ३. आत्मीय हृदय ४. प्रार्थना ५. नाम-जप या मन्त्र-जप।**

१. सुखासन

अभ्यास

(१) आसन पर, धरती पर, बेंच पर, कुर्सी पर, जहाँ भी आपको उपासना करना हो वहाँ सुखपूर्वक बैठिये।

(२) शरीर के किसी भी भाग पर अधिक दबाव न पड़े ऐसे बैठिये. नहीं तो

(३) छाती को सामने झुकाकर नहीं बैठिये। रीढ़ की हड्डी सीधी रखिये।
(४) सुखपूर्वक किसी भी स्थिति में बैठिये। दोनों हाथ गोद में, और आँखें हल्की बन्द रखिये। यही सुखासन है।

२. मन को शान्त करिये

मन तो भागता ही रहता है। उपासना आरम्भ करने से पहले इसे समेटना चाहिये, और शान्त करना चाहिये। यह उपासना का आवश्यक अंग है। मन को शान्त करने के लिए अपने आप को प्रेरणा देना चाहिये। आत्म-प्रेरणा के चार पद नीचे दिये गये हैं। **इन्हें याद कर लीजिये** और अपने ऊपर प्रयोग कीजिये।

अनुशासन-

(१) नीचे अंकित आत्म-प्रेरणाओं को **मन ही मन** दुहराइये।
(२) जल्दबाजी नहीं कीजिये। **धीमी गति से** अपने को प्रेरणाएँ दीजिये।
(३) **शान्त भाव से** और **दृढ़ता के साथ** प्रेरणाएँ दीजिये।
(४) आत्म-प्रेरणा का प्रत्येक पद समाप्त होने पर ५ सैकेन्ड तक शान्त बैठे रहिये, तब अगला पद आरंभ कीजिये।

अभ्यास

आत्म-प्रेरणा-

आँखें हल्की बंद रखिये।

(१) **सच्ची भावना से** इस इच्छा को २-३ बार मन में उठाइये-
"मैं शान्त-मन होना चाहता (ती) हूँ .....।
मैं शान्त-मन होना चाहता हूँ .....।"

(२) अब अपने आप से कहना आरम्भ करिये। (**धीमी गति। मन ही मन।**)
"यह उपासना का समय है,
इस समय तन की, धन की, चिन्ता नहीं करूँगा (गी)।
किसी की चिन्ता नहीं करूँगा .....।

(३) "इसलिये मन ! शान्त हो जाओ ..... शान्त हो जाओ .....।
शान्त हो जाओ मन .....।
शान्त .....। शा.....न्त।

(४) "इस समय, बस मैं और मेरे भगवान .....।
मैं और मेरे भगवान .....।
तीसरा कोई नहीं .....। कोई भी नहीं .....।

ओ ऽ ऽ ऽ म ....शान्ति .....शा .....न्ति .....शा.....न्ति.....।"

कुछ देर शान्त बैठे रहिये।

उपयोगी सुझाव-

(१) इन प्रेरणाओं में आधा-एक मिनिट, अथवा जितनी देर मन लगे, लगाइये।

(२) इन प्रेरणाओं का मन पर क्या प्रभाव पड़ा, इसे महत्व नहीं दीजिये। धैर्यपूर्वक प्रतिदिन करते रहिये।

(३) नित्य के अभ्यास से आपका मन धीरे-धीरे शान्त होने लगेगा।

(४) आप चाहें तो अपने प्रेरणा-वाक्य स्वयं भी बना लें।

३. आत्मीय भाव उपजाइये

आपको भगवान जितने अधिक आत्मीय अनुभव होंगे, उतनी ही अधिक प्रभावी आपकी उपासना होती चली जायेगी। अत: उपासना आरम्भ करने से पहले अपने आप को भगवान के प्रति मधुर व आत्मीय भावों से भरिये। नीचे चार भाव-पद 'अभ्यास' के अन्तर्गत दिये गये हैं। **इन्हें याद कर लीजिये।**

अनुशासन-

(१) अपनी शान्त मानसिकता को बनाए रखिये।

(२) जल्दी न करें। **धीमी गति से** भाव-वाक्यों को मन ही मन दुहराइये।

(३) **शान्त चित्त से** और **कोमलता के साथ** दुहराइये।

(४) प्रत्येक पद के समाप्त होने पर ५-१० सैकेन्ड उस पद के 'भाव' में बने रहिये। इसके बाद ही अगला पद आरम्भ कीजिये।

अभ्यास

आत्मीय स्मरण-

अपने इष्टदेव का भाव-भरा स्मरण इस प्रकार कीजिये-

(१) ''भगवन्! आप दिखते नहीं तो न दिखें। आपकी इच्छा।
पर आप सर्वव्यापी हैं। इसलिए सदा मेरे निकट हैं।

(२) ''प्रभु ! कितने ही जन्म हो चुके मेरे।
हर जन्म में नए प्रियजन मिले .....वहीं छूट गये .....।
नई धन-सम्पत्ति जोड़ी ....वहीं छूट गई .....।
सब बदलते गये.....
आगे भी ऐसे ही बदलते रहेंगे .....।

(३) ''पर आप कभी नहीं बदले,
हर जन्म में मेरे भगवान रहे,
आगे भी मेरे भगवान रहेंगे।

(४) ''मेरा-आपका अटूट सम्बन्ध है।
सदा के सम्बन्धी ....केवल आप हैं।
आत्मीय ....केवल आप हैं।
.....केवल आप हैं।
आपको मेरा नमन .....! नमन ..... ! नमन..... !''

उपयोगी सुझाव-

(१) इस भाव-भरे प्रभु-स्मरण में आधा-एक मिनिट, अथवा जितनी अधिक देर मन लगे, लगाइये।

(२) इस स्मरण का हृदय पर क्या प्रभाव पड़ा, इसे महत्व नहीं दीजिये। धैय पूर्वक प्रतिदिन करते रहिये।

(३) नित्य के ऐसे स्मरण से धीरे-धीरे आत्मीय भाव विकसित होने लगेगा।

(४) आप चाहें तो अपने भाव-वाक्य स्वयं भी बना लें।

"हमारे मन निर्मल हों। हम बेहतर इन्सान बनें। हम दूसरों के काम आएँ।" इस प्रकार के सद्भावों की अभिव्यक्ति को "प्रार्थना" कहते हैं। **सच्चे मन से** और **शरणागति भाव से** की गई ऐसी प्रार्थनाएँ बहुत प्रभावी होती हैं। नीचे प्रार्थना के तीन पद दिये गये हैं। **इन्हें याद कर लीजिये।**

अनुशासन–

(१) इन पदों को **धीमी गति से बोलिये।**
(२) शब्दों पर ध्यान देते रहिये। क्या कह रहे हैं, उसे **समझते भी रहिये।**
(३) प्रार्थना के पद जैसे हैं, वैसे **भाव भी भीतर उपजाइये।**

अभ्यास

आँखें खुली रखिये। हाथ जोड़ लीजिये, अथवा केवल मानसिक रूप से भगवान के प्रति नमन–भाव रखिये।

प्रार्थना – (धीमी गति। बोलकर।)

(१) हे प्रभो! अपनी कृपा की छाँह में ले लीजिये।
कर दूर खोटी बुद्धि सबको नेकनियती दीजिये॥

(२) हम आपके हो कर रहें, शुभ प्रेरणा लें आप से।
करते रहें नित्य पुण्य हम, बचते रहें हर पाप से॥

(३) सुख बाँट कर दुःख लें बँटा, प्रभु 'भाव' यह दे दीजिये।
उजला चरित्र बना हमें, उज्ज्वल भविष्यत् दीजिये॥

उपयोगी सुझाव–

(१) प्रार्थना में आपकी रुचि बढ़े, तो इसे एक से अधिक बार दुहराइये।

५. नाम जप-मन्त्र जप

"भगवान के किसी 'नाम' को या मन्त्र को **श्रद्धा और आत्मीयता के साथ** बार-बार दुहराना" - इसे 'जप करना' कहते हैं। जप भक्त को भगवान से जोड़ने वाले पुल के समान है। अत: अपने को प्रिय लगने वाला भगवान का कोई 'नाम' या मन्त्र चुन लीजिये। भगवान के प्रति आत्मीयता और अखण्ड विश्वास के भाव रखते हुए उसे नित्य जपा कीजिये।

अनुशासन-

(१) अपनी श्रद्धा व **आत्मीयता के भाव** को बनाए रखिये।

(२) जप करते समय उसे सुनने या अनुभव करने में **मन को लगाने** का प्रयास कीजिये।

(३) जल्दीबाजी नहीं कीजिये। **सामान्य गति से** जप कीजिये।

अभ्यास

जप-विधि-

(१) आँखें हल्की बन्द रखिये। कमर सीधी। दोनों हाथ गोद में।

(२) 'प्रार्थना' के बाद जप आरम्भ कीजिये।

(३) जप करते समय २-३ बार इन भावों को हृदय में उठाइये-
"पवित्र प्रभु ......! उदार प्रभु ......! करुणामय प्रभु!
बस मैं और मेरे प्रभु ....!"

(४) जब तक आपका मन लगे, अथवा जितना समय आपके पास हो, उतने समय तक जप कीजिये।

(५) अन्त में श्रद्धा-भाव से प्रभु को नमन करिये, और प्रसन्नता पूर्वक उठ जाइये।

बस यह ५ पदों वाली आपकी उपासना पूरी हो गयी।

उपयोगी सुझाव

(१) पृष्ठ १०-११ पर "**उपासना का सहज मार्ग**" दिया है। इसे एक-दो बार फिर पढ़ लें और समझ लें।

(२) आप चाहें तो जप के लिए माला का उपयोग करें। न चाहें तो न करें।

(३) आप मन ही मन जप करेंगे, अथवा धीमी आवाज में, अथवा जोर से, यह आपकी रुचि और इच्छा की बात है।

(४) यदि आपके सामने भगवान का चित्र या प्रतिमा हो, तो जप के समय आँखें खुली भी रख सकते हैं। भगवान की ओर इस भाव से देखते रहिए जैसे कोई अपने आत्मीय की ओर देखता है।

(५) ५ पदों वाली इस सहज उपासना में प्रायः १० मिनिट लगते हैं, पर आपको सुविधा और रुचि हो तो अधिक समय तक इसे किया करिये।

(६) किसी दिन घर पर उपासना न कर पाएँ तो जब और जहाँ भी समय मिले तब केवल "प्रार्थना और जप" कर लिया करिये।

(७) बहुत से लोग फुर्सत में होने पर चलते-चलते 'प्रार्थना' के पद गुनगुनाते रहते हैं या मन ही मन जप करते रहते है। **यह बहुत अच्छी क्रिया है।** आप भी ऐसा किया करिये। लेकिन कुछ समय के लिए स्वयं को भगवान के लिए नित्य पूरी तरह से खाली भी करिये, और ऊपर बताई गई विधियों के अनुसार प्रतिदिन नियमपूर्वक उपासना किया करिये।

॥ प्रथम खण्ड समाप्त ॥

द्वितीय खण्ड

भूमिका-

जब प्रथम खण्ड की ''उपासना'' भली-भाँति सधने लगे, तब आप इस द्वितीय खण्ड में प्रस्तुत की जा रही ''उपासना-साधना'' के अभ्यास आरम्भ कर दें। जिनका उपासना सम्बन्धी अभ्यास पहले से चल रहा हो, वे भी इसका क्रमशः अभ्यास करें और आगे बढ़ें।

प्रथम खण्ड की भूमिका में कहा गया है कि मनुष्य के मन की उग्रता को शान्त करना, फिर उसे विवेक के द्वारा सन्तुलित करके सृजन व सेवा की दिशा में लगाना बहुत बड़ा कार्य है, और इसे केवल **वास्तविक धर्म** कर सकता है। इस मिशन के संस्थापक प्रातः स्मरणीय पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने वास्तविक धर्म का सहज और व्यावहारिक अर्थ बताया है ''**उत्तम चिन्तन-उजला चरित्र-सेवामय उदार व्यवहार।**'' उनके समस्त शिक्षण के यही तीन मूल-तत्त्व रहे हैं। अतः इस ''साधना-आन्दोलन'' के अन्तर्गत प्रतिपादित की जा रही उपासना-साधना-आराधना भी इन तीन मूल-तत्त्वों से प्राणान्वित की गयी है। यही इस द्वितीय खण्ड की विषय-वस्तु है।

इस द्वितीय खण्ड में उपासना-साधना के जिन पदों को अभ्यास के लिए लिया गया है, वे नाम की दृष्टि से नए नहीं हैं। विशिष्ट और कठिन भी नहीं है। **साधना-आन्दोलन जन अभियान है।** इसलिए अभ्यास के ये पद शिक्षित-अशिक्षित, शहरी-ग्रामीण और प्रत्येक आस्थावान महिला-पुरुष के लिए सहज-साध्य ही रखे गये हैं।

हाँ, नई बात इनमें यह है कि आपको इन पदों को केवल कर्मकाण्ड के रूप में, अर्थात् यन्त्र के समान और रूखे-सूखे ढंग से सम्पन्न नहीं करना है। **विधि-विधान के साथ उपयुक्त मानसिकता और भावना को भी जोड़ना है।** इसे पलट कर यों कहेंगे कि अन्तःकरण में किसी विशिष्ट विचार भावना या कर्त्तव्य-बोध को जगाने के लिए ही साधना की विधियाँ बनाई जाती हैं। इन विचारों और भावों को जानना चाहिये, और विधियों के संग जोड़ते चलना चाहिये। आप कोई कर्मकाण्ड या अभ्यास करें, उसके पहले यह जानने का प्रयास अवश्य करें कि ''इस क्रिया को करने का क्या उद्देश्य है? इसे किस भावना के

यही वास्तविक उपासना-साधना है। **जब शरीर, मन और हृदय तीनों मिलकर उपासना या साधना करते हैं, तब चिन्तन, चरित्र और व्यवहार स्वयं ही उज्ज्वल दिशा की ओर मुड़ने लगते हैं।**

व्यक्ति के चिन्तन आदि की दिशा को उज्ज्वलता की ओर मोड़ना- यही इस साधना-आन्दोलन का मूल उद्देश्य है। यही इस् पुस्तिका में प्रस्तुत किये गये साधना-पदों का उद्देश्य है। अतः प्रत्येक अभ्यास की ''विवेचना'' को आप 'विवेचना खण्ड' में ध्यानपूर्वक पढ़ें और समझ लें। जो उद्देश्य और भाव तथा अनुशासन या नियम बताए गये हैं, उनका निर्वाह करते हुए यदि आप उपासना-साधना करेंगे, तो इच्छित परिणामों की आशा अवश्य की जा सकती है। पढ़ी जा रही बातों को आप भली प्रकार समझते भी चलें और श्रद्धा का सहारा लेकर उस प्रकार की अपनी मान्यताएँ बनाएँ, उसमें विश्वास करें।

इस पुस्तिका में दिये गये सभी अभ्यासों में ऐसी व्यवस्था ''अनुशासन'' शीर्षक के अन्तर्गत की गई है। इस व्यवस्था से साधारण से दिखते अभ्यासों में नया प्राण आ गया है। उनकी प्रखरता बढ़ गयी है। परिणामस्वरूप, साधकों के स्वभाव और व्यवहार में संयम का आना सुनिश्चित है। भीतर सोई पड़ी सृजन की शक्ति के जागने और क्रियाशील होने की भी समस्त सम्भावनाएँ हैं। हमारी ऐसी मान्यता है कि मानव-मन की उग्रता को शान्त एवं सन्तुलित करने और सेवा की ओर उन्मुख करने का इससे अच्छा उपाय शायद ही कहीं उपलब्ध हो सके। ऋषि-सत्ता का यह अभिनव मार्गदर्शन है।

इस पुस्तिका में दूसरी नई बात यह है कि ''उपासना'' और ''साधना'' को एक ही बात मान लेने का जो भ्रम फैला हुआ है, उसे दूर करने का प्रयत्न किया गया है। उपासना और साधना में अन्तर होता है। इसे भली प्रकार समझ लेना चाहिये।

''उपासना'' सामान्यतः अपने पूजा-गृह में या मंदिर-गुरुद्वारा में बैठकर पूरी कर ली जाती है। कुछ कर्मकाण्ड करके भगवान् के नाम या मन्त्र का जप किया जाता है। पर ''साधना'' करने के लिए तो अपने आप पर लगाम भी लगाना होती है। पूज्य गुरुदेव कहते हैं ''**साधना का अर्थ जीवन-साधना है। जीवन को साध कर रखना।**'' पूजा-गृह में बार-बार दुहरा रहे थे ''.....तत्सवितुर्वरेण्यं....'' हम सविता देव का, उनकी दिव्यता-उजलेपन का वरण करें।'' यह उपासना थी। अब साधना करना है, तो जब बाहर की दुनियाँ में जाएँ, तब पूजा-गृह में भगवान से कही अपनी बात को याद रखें उजला ही सोचें

उजला ही व्यवहार करें। **कथनी-करनी एक समान, यह है साधक की पहचान।** संक्षेप में यों कहें कि यदि **मन्त्र को जपना उपासना है, तो मन्त्र के अनुसार जीवन जीना साधना है।** साधक तो वह है, जो अपने विचारों को, भाव और कर्मों को साध कर रखता है। उन्हें तृष्णा और वासना के, स्वार्थ और संकीर्णता के निचले स्तरों पर गिरने नहीं देता। पवित्रता और सौम्यता, उदारता और सेवा, साधक की सटीक पहचान हैं।

नाम या मन्त्र जप कर प्रेरणा लेना अच्छी बात है। उससे कहीं ज्यादा अच्छी बात है "मन्त्र की आज्ञा मानना, उसके अनुरूप जीवन जीना।" अतः आप उपासक तो बनें ही, साधक भी बनें। उत्तम चिन्तन-उजला चरित्र-सेवामय उदार व्यवहार अपना कर भगवान् के प्रिय भी बनें। स्वयं को **बेहतर इन्सान** के रूप में विश्व को अर्पित कर आप धरती पर स्वर्ग उतारने में सचमुच बहुत बड़ा योगदान करेंगे। अपना सुधार वस्तुतः संसार की सबसे बड़ी सेवा है।

साधना-आन्दोलन की "साधना" यही शिक्षण और मार्गदर्शन कर रही है। इसलिए **प्रातःकाल के उपासना-कार्यक्रम** की विधियाँ बताकर ही इस द्वितीय खण्ड को समाप्त नहीं कर दिया गया है। उसे **दिन के शेषकाल के साधना-कार्यक्रम** तक फैलाया गया है। पूज्य गुरुदेव ने **साधना के चार व्यावहारिक स्वरूप** बताए हैं- **उपासना, स्वाध्याय, संयम, सेवा।** अतः इस पुस्तिका में उपासना खण्ड के बाद साधना-खण्ड जुड़ा है, जिसमें इनकी विस्तार से व्याख्या की गई है और ये तथ्य अनेक प्रकार से दुहराए गये हैं कि-

(१) अकेली उपासना काफी नहीं है,
उसमें चमक पैदा करना चाहते हैं, तो "स्वाध्याय" कीजिये।

(२) अकेली उपासना काफी नहीं है,
उसमें प्रभाव लाना चाहते हैं, तो "संयम" का अभ्यास कीजिये।

(३) अकेली उपासना काफी नहीं है,
ईश्वर की अनुभूति चाहते हैं, तो "सेवा" कीजिये।

बात बहुत आसानी से समझ में आती है। स्वाध्याय चिन्तन को ऊँचा उठाता है। संयम चरित्र को उजला बनाता है। विनम्र सेवा व्यवहार को देव-तुल्य बना देती है। इस प्रकार उत्तम चिन्तन, उजला चरित्र, सेवामय उदार व्यवहार

कर ले जाएँगे। साधना के यह चार व्यावहारिक रूप ईश्वर के उज्ज्वल मार्ग पर सुदृढ़ कदमों से चलने की सामर्थ्य प्रदान करते हैं। तब भगवान् अनजानी सत्ता के रूप में, दण्ड देने वाली भयानक शक्ति के रूप में प्रतीत नहीं होते। भगवान् तो कोमलता और आत्मिक सौन्दर्य के साक्षात रूप हैं। हम **बेहतर इन्सान** बनने के प्रयास करें, तो उनके पास हमें देने के लिये विपुल प्रेरणा, आशीष और प्यार ही प्यार है। उपासना-साधना के मार्ग पर चलते हुए हमें-आपको इन्हें ही पाने का प्रयास करना चाहिये।

अतः आस्तिकता-संवर्धन के इस विश्वव्यापी साधना-आन्दोलन में भाग लेकर आप अपनी जीवात्मा का हित तो साधें ही, नरक जैसे जलते इस विश्व को स्वर्ग जैसा सुखद-शीतल बनाने में अपनी अंजलि भर ज्ञान-यज्ञ सेवा का भी योगदान करें।

प्रस्तुत साधना-पद्धति में अशिक्षित व्यक्तियों के लिए भी सुविधापूर्ण व्यवस्था की गयी है। जिससे कि वे पाठ, स्वाध्याय जैसे पढ़े जाने वाले साधना-पद बिना पढ़े ही, किन्तु उतने ही प्रभावी ढंग से सम्पन्न कर सकें, तथा छोटे बच्चे भी दान और सेवा जैसे महान् कर्मों का अभ्यास सरलतापूर्वक कर सकें। अपने परिचय व प्रभाव क्षेत्र में इन सहज विधियों को सिखाने-समझाने के लिये **हमारे कार्यकर्ता भाई-बहिनों को प्रयास करना है। इस ज्ञानयज्ञ को करने का उनका श्रम भगवान् महाकाल की ही सेवा होगी।**

साधकों की सुविधा के लिए उपासना-साधना कार्यक्रम को दो खण्डों में बाँटा गया है- **(१) प्रातःकाल के उपासना कार्यक्रम, (२) दिन के शेषकाल के साधना-कार्यक्रम।** इन दोनों खण्डों में केवल विधियाँ-नियम-अनुशासन दिये गये हैं। इससे उपासना-साधना सम्पन्न करने में सुविधा होगी।

विधियाँ आदि पूरी हो जाने के बाद पुनः दो खण्ड हैं- **(१) "उपासना" कार्यक्रमों की विवेचना (२) "साधना" कार्यक्रमों की विवेचना।** फुर्सत के समय इन विवेचना-खण्डों को आप ध्यानपूर्वक और अनेक बार पढ़ें। इससे विधि और नियमों के कारण और महत्त्व आप समझ सकेंगे। फलस्वरूप, उन्हें अधिक उत्साह से सम्पन्न करने की आपकी इच्छा होगी। साथ ही सही पृष्ठभूमि बन जाने से आप उन्हें सफलतापूर्वक सम्पन्न भी कर सकेंगे।

प्रातःकाल के उपासना-कार्यक्रम

द्वितीय खण्ड की उपासना के आठ पद हैं। वे हैं-

(१) शान्त मन	(५) जप-ध्यान
(२) आत्मीय भावना	(६) प्रार्थना
(३) षट्कर्म-देवपूजन	(७) सूर्य अर्घ्य-अर्पण
(४) पाठ	(८) दान-पुण्य।

१.२. शान्त मन-आत्मीय भावना

प्रथम खण्ड में पृष्ठ १३, १४, १५ पर विस्तृत वर्णन है, वहाँ देखिये।

३. षट्कर्म-देवपूजन

गायत्री-परिवार द्वारा प्रकाशित उपासना सम्बन्धी पुस्तकों में षट्कर्म एवं देवपूजन का विस्तार से उल्लेख है। अधिकांश परिजन उन्हें जानते-करते भी है। इसलिए उनकी विधियों को यहाँ नहीं दुहराया जा रहा है।

अनुशासन-

षट्कर्म और देवपूजन का प्रत्येक कर्मकाण्ड करते समय उससे संगति रखनेवाले विचार और भावों को अपने **अन्तःकरण में उभारना** आवश्यक है। तभी वह प्रभावपूर्ण बनता है और शक्ति को उभारता है। जैसे कि

अभ्यास

(१) **पवित्रता** को धारण करने की इच्छा या भाव के साथ **पवित्रीकरण** कीजिये।

(२) **चैतन्यता** को धारण करने की इच्छा या भाव के साथ **आचमन** कीजिये।

(३) **शक्ति व तेज** को धारण करने की इच्छा या भाव के साथ **शिखाबन्ध-प्राणायाम- न्यास** कीजिये।

(४) **विनम्रता** को धारण करने की इच्छा या भाव के साथ **भूमिपूजन** कीजिये।

४. पाठ

पाठ- (१) जीवन जीने की सही राहों से भटके हुए लोगों को उज्ज्वल जीवन की राह बताता है।

(२) मन को स्थिर करता है और जप-ध्यान के योग्य बनाता है।

अनुशासन-

(१) **धीमी गति से** पाठ कीजिये।

(२) **समझते हुए** पाठ कीजिये।

(३) **श्रद्धा और विश्वास के साथ** पाठ कीजिये।

अभ्यास

शिक्षित व्यक्ति- "**हमारा युग-निर्माण सत्संकल्प**" का पाठ कीजिये।

अशिक्षित व्यक्ति-

(१) निम्नलिखित **सद्भाव को याद कर लीजिये।** (कार्यकर्ता याद करा दें)

(२) इस सद्भाव को इष्टदेव से निवेदन कीजिये :-

"हे प्रभु! मुझे सद्बुद्धि और सद्भाव दीजिये।
मैं अच्छा ही अच्छा सोचा करूँ।
अच्छे ही अच्छे कर्म किया करूँ।
प्रभु! हम सबको सद्बुद्धि और सद्भाव दीजिये।
हम सब को उज्ज्वल भविष्य दीजिये।"

५. जप-ध्यान

"वाणी-मन-हृदय तीनों को लगाकर मन्त्र या 'नाम' को बार-बार दुहराना," यह जप है। "इष्टदेव का या उनके दिव्य गुणों का चिन्तन करना," -यह ध्यान है।

नीचे अ-ब-स तीन स्तरों के ध्यान दिये जा रहे हैं। अपनी रुचि और क्षमता के अनुसार एक चुनिये। उस 'ध्यान' को जप के साथ नित्य किया

कोई भी जप-ध्यान करें, पर **अनुशासन** का अवश्य पालन कीजिये। तभी प्रगति होगी।

अनुशासन-

यह अनुशासन सभी तीनों प्रकार के 'ध्यान' के लिए हैं :-

(१) पूर्व या उत्तर या स्थापित प्रतीक की ओर मुँह करके बैठा करिये।

(२) स्थिर आसन से बैठने का अभ्यास बढ़ाइये। बार-बार बैठक बदलने से ध्यान टूटता है।

(३) एक पूरा मन्त्र जपने या १६ 'नाम' जपने के बाद ही माला का एक दाना सरकाइये, पहले नहीं।

(४) मन्त्र या 'नाम' को मन ही मन अथवा बहुत हलकी ध्वनि से जपिये।

(५) **सामान्य गति** से जप कीजिये। तेज या मन्द दोनों गतियाँ उचित नहीं हैं।

(६) **एकाग्र चित्त** से जप-ध्यान कीजिए। चित्त को संसार में मंत उलझाइये।

(७) **श्रद्धा और आत्मीय-भाव** को लगातार बनाए रखने का प्रयास कीजिये।

(अ) यदि ध्यान करते नहीं बनता है, तो-

अनुशासन - पूर्वानुसार।

अभ्यास

(१) - आँखें खुली रखिये।

- आप अपने किसी प्रिय या श्रद्धेय को जैसे आत्मीय भाव से देखते हैं, वैसे ही इष्टदेव के चित्र/ मूर्ति को कुछ समय तक **आत्मीय भाव से देखते रहिये।**

(पूरे शरीर को। अथवा चरणों को। अथवा मुख को।)

(२) इस दर्शन के साथ-साथ अपनी रुचि के अनुसार इष्टदेव के प्रति किसी "**आत्मीय भाव**" को मन में भावना सहित दुहराते रहिये। जैसे कि-

भगवन् !

- आप ही मेरे **प्राण** हैं , - आप साक्षात **पवित्रता** हैं,
- आप ही मेरे **दुःखहर्ता** हैं, - करुणामय प्रभु ! मुझे **सद्बुद्धि** दीजिये,

(आप चाहें तो अपनी इच्छानुसार अन्य भाव वाक्य बना लें)

(३) श्रद्धा-भाव से नमन कीजिये। अब **सामान्य गति से** जप आरम्भ कीजिये।

(४) पूरे जप-काल में लगातार देखते रहिये
इष्टदेव के -शरीर को अथवा चरणों को **श्रद्धा-भाव से,**
-मुख को **आत्मीय-भाव से।**

(५) बीच-बीच में किसी **"सद्भाव"** को पुनः मन में उठाते रहिये।

(६) इस प्रकार **जप-दर्शन-भावभरे स्मरण** के साथ कम से कम एक माला (या १० मिनिट) अथवा जितना अधिक बन पड़े उतना जप कीजिये।

(७) अन्त में, इष्टदेव को श्रद्धा-भाव से नमन करके जप समाप्त कीजिये।

(ब) यदि थोड़ा-थोड़ा ध्यान करते बनता है, तो -

अनुशासन - पूर्वानुसार।

अभ्यास

(१) - आखें खुली रखिये।
- आप अपने किसी प्रिय या श्रद्धेय को जैसे आत्मीय-भाव से देखा करते हैं, वैसे ही इष्टदेव के चित्र/मूर्ति को कुछ समय तक **आत्मीय-भाव से देखते रहिये।**

(पूरे शरीर को। अथवा चरणों को। अथवा मुख को।)

(२) इस दर्शन के साथ-साथ अपनी रुचि के अनुसार इष्टदेव के प्रति किसी **आत्मीय भाव** को मन में भावना सहित दुहराते रहिये। जैसे कि:-

भगवन् !

- आप ही मेरे **प्राण** हैं , - आप साक्षात **पवित्रता** हैं,
- आप ही मेरे **दुःखहर्ता** हैं, - करुणामय प्रभु ! मुझे **सद्बुद्धि** दीजिये,
- आप ही मेरे **आनन्द** हैं, सबको **सद्बुद्धि** दीजिये।

(आप चाहें तो अपनी इच्छानुसार अन्य भाव-वाक्य बना लें)

(३) श्रद्धा-भाव से नमन कीजिये। अब **सामान्य गति से** जप आरम्भ कीजिये।

(४)- कुछ समय बाद आँखें हल्के से बन्द कर लीजिये।

'ध्यान' को टिकाए रखने का प्रयास कीजिये। जप जारी रखिये।
- प्रयास कीजिये कि **तेज से युक्त ध्यान** करते बने।
यदि न बने तो निराशा नहीं। धीरे-धीरे बनने लगेगा।
- जब मन ऊबने-उचटने लगे, या मानस-चित्र मिटने लगें तब,
हल्के से आँखें खोल लीजिये। जप जारी रखिये।

(५) पुनः खुली आँखों से चित्र/मूर्ति को आत्मीय भाव से देखते रहिये, और किसी **आत्मीय भाव** को मन में उठाइये। (क्रमांक-२)

(६) कुछ समय बाद पुनः आँखें हल्के से बन्द करिये, और देखे हुए अंग या शरीर का मन में "ध्यान" करने लगिये।(क्रमांक -४)

(७) इस प्रकार खुली और बन्द आँखों से दर्शन-ध्यान का क्रम दुहराते रहिये। जप लगातार जारी रखिये।

(८) इस क्रम से **कम से कम १ माला (या १०मिनिट),** अथवा जितना अधिक बन पड़े उतना,**जप-ध्यान-भाव भरा स्मरण** कीजिये।

(९) अन्त में, श्रद्धा-भाव से इष्टदेव को नमन कर के जप समाप्त कीजिये।

(स) यदि अच्छा ध्यान करते बनता है, तो-

अनुशासन-

(१) पूर्वानुसार। एवं-

(२) नीचे दिये गए ध्यान-वाक्यों का केवल ध्यान या भाव करिये, उच्चारण नहीं।

(३)'......' ऐसे बिन्दु-रेखा से युक्त प्रत्येक ध्यान-वाक्य का कम से कम १ मिनिट ध्यान करिये, अधिक अपनी इच्छानुसार।

अभ्यास

(१) आँखें बन्द रखिये।

(२) **श्रद्धा व आत्मीयता की भावना** से इष्टदेव का स्मरण-नमन कीजिये।

(३) **सामान्य गति** से जप प्रारम्भ कीजिये। जप लगातार जारी रखिये।

(४) जप के साथ-साथ निम्नांकित ३ पदों में ध्यान कीजिये:-

पहला पद -

ध्यान कीजिये- "भगवान सूर्यनारायण से /सूर्यमण्डल के मध्य विराजमान इष्टदेव से / देवात्मा हिमालय से
- दिव्य प्रकाश पुंज आ रहा है
- मेरे चारों ओर बरस रहा है
- मैं इस दिव्य प्रकाश में डूबा हुआ हूँ........।

दूसरा पद -

ध्यान जारी रखिये- "**मेरा** - मन प्रकाशवान......
- हृदय प्रकाशवान.......
- शरीर बाहर-भीतर से प्रकाशवान.........
- कण-कण प्रकाशवान............

तीसरा पद-

ध्यान जारी रखिये-
- "प्रकाशवान मन.......**पवित्र मन........**
- प्रकाशवान हृदय.......**उदार हृदय**..........
- प्रकाशवान शरीर.......**सेवाभावी शरीर**........
- **सेवामय जीवन** ....**सार्थक जीवन** ....।"

(५) इस ध्यान के साथ कम से कम ३ माला,या जितना अधिक बन पड़े उतना, जप-ध्यान कीजिये।

(६) जप समाप्त करने के पहले भावना कीजिये-
"भगवान ! मुझे सद्बुद्धि दीजिये, उज्ज्वल भविष्य दीजिये।
सबको सद्बुद्धि दीजिये, सबको उज्ज्वल भविष्य दीजिये।"

(७) अन्त में, श्रद्धा-भाव से इष्टदेव को नमन कर के जप समाप्त कीजिये।

६. प्रार्थना

"हमारे मन निर्मल हों। हम बेहतर इन्सान बनें। हम दूसरों के काम आएँ" इस प्रकार के सद्भावों की अपने इष्टदेव से अभिव्यक्ति को 'प्रार्थना' कहते हैं। **सच्चे मन से** और **शरणागति भाव से** की गई ऐसी प्रार्थना बहुत प्रभावी होती है।

आत्म-कल्याण और विश्व-कल्याण की दो प्रार्थनाएँ नीचे दी गयी हैं। कोई एक चुन लीजिए। **उसे याद कर लीजिये।**

अनुशासन-

(१) प्रार्थना को **धीमी गति से बोलिये।**

(२) शब्दों पर ध्यान दीजिये। आप क्या कह रहे हैं, उसे **समझते भी रहिये।**

(३) प्रार्थना के शब्द और पद जैसे हैं, वैसे **भाव भी भीतर उपजाइये।**

अभ्यास

आँखें खुली रखिये। चाहें तो हाथ जोड़ लीजिये, अथवा केवल मानसिक रूप से इष्ट देव के प्रति नमन-भावना रखिये।

पहली प्रार्थना-

(१) **"हे प्रभु ! अपनी कृपा की छाँह में ले लीजिये।**
कर दूर खोटी बुद्धि सबको नेकनियति दीजिये॥

(२) **हम आपके हो कर रहें, शुभ प्रेरणा लें आपसे।**
करते रहे नित पुण्य हम, बचते रहें हर पाप से॥

(३) **सुख बाँट कर दुःख लें बँटा, प्रभु 'भाव' यह दे दीजिये।**
उजला चरित्र बना हमें, उज्ज्वल भविष्यत् दीजिये॥ "

दूसरी प्रार्थना-

(१) **"हे प्रभु! मेरी खोटी बुद्धि को ठीक कर दीजिये।**
मैं किसी की चुगली-निन्दा न सुनूँ, न करूँ।
मैं किसी का बुरा न सोचूँ, न करूँ।
मैं पापों से बचूँ।

(२) **प्रभु! मुझे सद्बुद्धि दीजिये।**
मैं सबसे मीठा बोलूँ।
सबका हित सोचूँ। सबका हित करूँ।
हर दिन कोई पुण्य-कर्म करूँ।
हम सब मिल-जुलकर रहें।"

प्रार्थना की समाप्ति पर श्रद्धा-भाव से नमन करिये।

७. सूर्य अर्घ्य-अर्पण

भगवान् सूर्य इष्टदेव के प्रत्यक्ष प्रतिनिधि हैं। हमारे भीतर प्राण व ज्ञान के संचारकर्ता हैं। गायत्री के देवता हैं, सविता देव हैं। अत: उपासना के द्वारा अभिमन्त्रित हुए जल को श्रद्धा और विनयपूर्वक उन्हें समर्पित किया जाता है। यही अर्घ्य-अर्पण है। अर्घ्य-अर्पण उपासना का अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग है।

अनुशासन-

अत: - अर्घ्य-अर्पण की सम्पूर्ण प्रक्रिया **अत्यन्त आदरपूर्वक** और **श्रद्धापूर्वक** सम्पन्न कीजिये।

अभ्यास

(१) पूजा-वेदी पर रखे जल के पात्र को दोनों हाथों से थामकर बाहर आएँ।
(२) सूर्यदेव की ओर मुँह करके भगवती तुलसी के समीप खड़े हों।
(३) श्रद्धापूर्वक मन ही मन निवेदन करें-

"भगवन्! -सद्भाव घुला यह अर्घ्य स्वीकार करें।
- आपकी ऊर्जा से यह अर्घ्य विश्व में फैल जाए।
- अर्घ्य के साथ मेरे सद्भाव भी विश्व में फैलजाएँ।
-' सब सुखी रहें। सब निरोग रहें।
सब ओर शुभ ही शुभ देखें।
सबका कल्याण हो'।"

(४) **बहुत श्रद्धा और विनम्रता के साथ,** अर्घ्य-मन्त्र या जप-मन्त्र बोलते हुए, तुलसी माता की जड़ के समीप जल को **धीरे-धीरे** अर्पित करें।

अर्घ्य-अर्पण मन्त्र - "ॐ सूर्यदेव सहस्त्रांशो तेजोराशे जगत्पते।
अनुकम्पय माम् भक्त्या गृहाणार्घ्यम् दिवाकर।"

(५) भगवान् सूर्य को नमन करें। भगवती तुलसी को नमन करें। लौट आएँ।

८. दान-पुण्य

उपयुक्त दक्षिणा देकर ही उपासना और यज्ञ सफल होते हैं इसलिए उपासना की समाप्ति 'दान-पुण्य' से कीजिये। अपने बच्चों से दान-पुण्य का अभ्यास करा कर उन्हें भी संस्कारवान् बनाइये।

दान जैसे महान् सेवा-कार्य में अहंकार विष घोल देता है। अत: आगे 'अभ्यास' के अन्तर्गत दिया गया **प्रेरणा वाक्य याद कर लीजिये, बच्चों को भी याद करा दीजिये।** यह दान देने के अहंकार-विष से रक्षा करेगा।

अनुशासन-

(१) **विनम्र भाव से** ही यह अभ्यास करें।

(२) **सेवा का सुयोग मान कर** यह अभ्यास करें।

(३) **स्नेह भरी वाणी से उत्साह जगाकर** बच्चों से यह अभ्यास कराएँ।

अभ्यास

(१) पीले रंग और स्वस्तिक आदि से मिट्टी के एक पात्र को सुन्दर बनाइये लकड़ी की चौकी लाइये या ईंटों को जमाकर चौकी जैसा आकार बनाइये इसे पूजा-स्थान के बगल में स्थापित कीजिये। **यह धर्म-घट है।**

(२) चौकी के पास दूसरे पात्र में साफ किया हुआ ऐसा कोई भी अन्न भर कर नीचे रखिये, जिसका आप स्वयं उपयोग करते हैं।

(३) अर्घ्य-अर्पण के बाद, **छोटे बच्चों** में जो सब से बड़ा हो (कन्या या बालक) उसे **स्नेहपूर्वक** साथ लेकर धर्मघट के पास जाइये। ढक्कन हटाइये

(४) पात्र में से अन्न निकालिये। पहले बच्चे की अञ्जलि भरिये, फिर अपनी

(५) अब आप **श्रद्धापूर्वक** कहें **"दूसरों को भोजन पहले-अपना भोजन बाद में।"** कहकर अपनी अञ्जलि के अन्न को धर्मघट में अर्पित कर दीजिये

(६) बच्चे को भी ऐसा कहने और करने के लिए **प्यार से कहिये। बच्चा भी कहे 'दूसरों को भोजन पहले-अपना भोजन बाद में।'** कहकर अपनी अञ्जलि के अन्न को धर्मघट में **धीरे से अर्पित करे।** बच्चा कहीं गलती करे, तो स्नेहपूर्वक समझाइये।

इस दान-पुण्य के कृत्य को कर लेने पर ''प्रातः काल के उपासना-कार्यक्रम'' पूरे हो जाते हैं।

विशेष ज्ञातव्य-

(१) अन्न और धर्मघट की व्यवस्था सबसे उत्तम है। किन्तु यदि इसमें कठिनाई का अनुभव हो, तो उनके बदले सिक्कों और बन्द गुल्लक को प्रयोग में लाएँ। सिक्के डालते हुए आप भी कहें और कन्या/बालक से भी दुहरवाएँ **''हमारे साधन - पहले सेवा कार्य में लगें, तब स्वार्थ में लगें।''**

(२) कन्या-बालक में भेद न करें। बच्चों में जो भी सबसे बड़ा हो, उससे धन या अन्न अर्पित कराएँ। छोटे बच्चे न हों, तब अकेले ही यह दान-पुण्य करें।

''दिन के शेष-काल'' के

साधना-कार्यक्रम

(१) पूर्व में कहा जा चुका है कि पूज्य गुरुदेव ''साधना'' का अर्थ करते हैं ''जीवन-साधना। जीवन को साधकर रखना।'' हमारे विचार, भाव और कर्म पशुओं जैसे स्वार्थ भरे और विवेकहीन न हों। इन्सान का बाहरी चोला पाया है, तो इन्सानियत का भीतरी चोला भी जरूरी है। मनुष्य कहलाने की यह न्यूनतम शर्त है। इसलिए जीवन को साध कर रखने के लिए पहला कदम है- 'अपने विचार, भाव और कर्मों को ऋणात्मकता से, पशुता से बचाकर रखना।'

''संयम'' साधना पशुता से हमारा भली प्रकार बचाव करती है।

(२) दूसरा कदम है-विचार, भाव और कर्म में धनात्मकता की बढ़ोत्तरी। हम जो कुछ इच्छा करें- सोचें, श्रेष्ठ सोचें। जो करें, श्रेष्ठ करें। श्रेष्ठ जो कुछ करें, उसके साथ श्रेष्ठ उद्देश्य और श्रेष्ठ भावों को पहले जोड़ लें, फिर करें। धनात्मकता को, याने इन्सानियत को साधने की कला यह है कि हमारा कोई भी कर्म कोरा कर्म न हो, कर्म के पीछे श्रेष्ठ विचार और श्रेष्ठ भाव की प्रेरणा भी हो।

''स्वाध्याय'' साधना का नित्य अभ्यास इस प्रेरणा को पाने के लिए हमारी बहुत बड़ी सहायता करता है।

(३) तीसरा कदम है-स्वाध्याय और संयम से साधे गये अपने जीवन को देव-स्तर पर उठाना। हमारे परिचय क्षेत्र में जो व्यक्ति ऋणात्मकता का जीवन जी रहे हों, अथवा धनात्मकता को अपनाने में कठिनाई का अनुभव कर रहे हों, उन्हें ढाढ़स बँधाना- प्रोत्साहित करना, आगे कदम बढ़ाने में सहयोग देना। यह श्रेष्ठ कर्म उन लोगों का हित तो करता ही है जो अध्यात्म-मार्ग में पिछड़ गये हैं, यह हमारे जीवन को भी देव-स्तर पर उठाता है। धर्म-शास्त्रों ने इस सेवा-कर्म की बड़ी महिमा बखान की है, इसे ''भगवान् का भजन करना'' कहा है। केवल गाने-बजाने को 'भजन करना' नहीं कहते। 'भज सेवायाम्' सेवा भी भजन है, श्रेष्ठतम भजन है, यह धर्म-शास्त्रों की घोषणा है। अतः हम अपने मन में यह विश्वास दृढ़ करें कि

इस प्रकार जब स्वाध्याय-संयम-सेवा को हम अपनी दिन-चर्या में उचित स्थान देने लगते हैं, तब हमारी उपासना भी क्रमशः भगवत्-साधना और फिर भगवत्-आराधना की ऊँचाइयों पर उठती चली जाती है।

प्रस्तुत साधना-कार्यक्रम में धर्म-कृत्यों के साथ-साथ स्वाध्याय-संयम-सेवा के पाँच सुलभ कार्यक्रम दिये गये हैं। यह अभ्यास सभी के लिए सहज साध्य है। अतः इनमें से जो भी अभी सध सकें, उन्हें आप आरम्भ कर दें। शेष को अपनी सुविधा और बढ़ती हुई क्षमता के अनुसार क्रमशः जोड़ते जाएँ और उज्ज्वल साधना-पथ पर बढ़ते चले जाएँ।

बस, आप अहंकार से बचें और अपनी लगन को बनाए रखें।

१. मन्त्र-लेखन

मन्त्र-लेखन क्यों करें ?

(१) मन्त्र या 'नाम' लिखने से 'एकाग्रता' और 'उत्तम मानसिकता' यह दो गुण अपने में विकसित होते हैं।

(२)- मन्त्रों के शब्दार्थ तो अलग-अलग होते हैं, पर उन सबमें "नमन और प्रार्थना का भाव" एक-समान है। सभी मन्त्रों का **मूल भाव** यह है-
" . . . . , नमन ! आपका दिव्य तेज हमें अच्छे मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता रहे।"

- मातृभाषा में यह **भाव** लिखने से मन, बुद्धि, हृदय तीनों की शुद्धि होती है।

(३) उपरोक्त **भाव** में खाली स्थान में इष्टदेव का नाम अथवा भगवान्-भगवती-माँ आदि कोई सम्बोधन अपनी रुचि के अनुसार जोड़ लीजिये।

अनुशासन-

(१) **मध्यम गति** से मन्त्र-लेखन कीजिये। **श्रद्धा-भाव** से लिखिये।

(२) जितनी बन पड़े, उतनी **अच्छी लिपि** में लिखिये।

अभ्यास

(१) प्रत्येक नया पृष्ठ जब आरम्भ करें, तब पहली पंक्ति में सम्बोधन सहित उपरोक्त **भाव** को अपनी मातृभाषा में लिखिये।

(३) जब पृष्ठ समाप्त होए, तब आखरी पंक्ति में पुनः **भाव** को लिखिये।
(४) मन्त्र-लेखन करके पुस्तिका को माथे से लगाइये। सुरक्षित रख दीजिये।

अधिक प्रभावी मन्त्र-लेखन कैसे करें ?

(१) मन्त्र लिखते समय-

- मन्त्र के **पहले शब्द** के अर्थ को मन लाइये।
- अर्थ को लगातार बनाए रखिये और एक मन्त्र लिखिये।
- फिर मन्त्र के **दूसरे शब्द** के अर्थ को मन में लाइये।
- अर्थ को लगातार बनाए रखिए और एक मन्त्र लिखिये।
- इस प्रकार क्रमशः एक-एक शब्द के अर्थ को मन में लाते जाइये, और निर्धारित संख्या में मन्त्र-लेखन कीजिये।

(२) भगवन्नाम लिखते समय-

- इष्टदेव के प्रिय लगने वाले एक गुण को मन में लाइये।
- गुण को लगातार बनाए रखकर एक पंक्ति में (प्रायः १६) नाम लिखिये।
- फिर इष्टदेव के प्रिय लगने वाले दूसरे गुण को मन में लाइये।
- गुण को लगातार बनाए रखकर एक पंक्ति में (प्रायः १६) नाम लिखिये।
- इस प्रकार क्रमशः एक-एक प्रिय गुण को मन में लाते जाइये, और निर्धारित संख्या में नाम-लेखन कीजिये।

२. देव-दर्शन

देव-दर्शन क्यों करें ?

उचित प्रकार से देव-दर्शन करने से-

- पवित्रता और विनम्रता भरा जीवन जीने की इच्छा होती है।
- सभी मनुष्यों के प्रति सद्भाव और समता के व्यवहार होने लगते हैं।

अनुशासन-

(१) **मन को शान्त** करके, या शान्त करने के लिये देवालय में प्रवेश करिये।

अभ्यास

(१) शान्त मन से दर्शन करिये। तब श्रद्धा का उभार सहज ही होने लगता है। **श्रद्धा से ही पवित्रता-विनम्रता जैसी विभूतियाँ प्राप्त होती हैं।**

(२) देव-प्रतिमा ईश्वर की प्रतिनिधि है। अतः देव-दर्शन करते समय-

- परमसत्ता का स्मरण करिये। श्रद्धापूर्वक नमन करिये।
- कुछ समय इष्ट मन्त्र या भगवन्नाम का मानसिक जप कीजिये।
- अपनेपन का भाव रखिये, जैसे '**मैं आपका ही अंश हूँ**'।

(३) अधिक भावनाशील कर्तव्यों की याद दिलाने वाली "प्रार्थना" भी करिये। (आगे 'विवेचना-खण्ड' में **देव-दर्शन** शीर्षक देखिये)

(४) देव-दर्शन की प्रक्रिया पूरी कीजिये इस निवेदन से-

'भगवन्! मुझे सद्बुद्धि दीजिये। सबको सद्बुद्धि दीजिये। सबका भला हो।'

(५) अब देवालय में कुछ समय श्रद्धा-भाव से **पूर्णतः शान्त बैठिये।** इससे वहाँ का सात्विक वातावरण आप पर और भी सत्प्रभाव डालेगा।

(६) बन पड़े तो कोई देवालय-सेवा करने के बाद ही वापिस आया करिये।

(७) आप कितने ही व्यस्त व्यक्ति हों, पर सप्ताह में कम से कम एक बार देव-दर्शन करने अवश्य जाया करिये। **इससे अन्तःकरण शुद्ध होता है।**

३. स्वाध्याय

स्वाध्याय क्यों करें?

(१) जो पतन की ओर ले जाती हैं, ऐसी इच्छाओं में प्रायः ही लोगों का मन भटकता रहता है। स्वाध्याय मन को वहाँ से समेटता है।

(२) दूषित मनोवृत्तियों पर खुद ही नियन्त्रण लगाने की प्रेरणा देता है।

(३) विचार करने के स्तर को क्रमशः उठाते जाता है। उत्तम कार्यों को करने की प्रेरणा देता है।

इसलिए नित्य स्वाध्याय कीजिये।

स्वाध्याय के तीन अंग हैं अध्ययन-मनन-चिन्तन। स्वाध्याय करने

(१) शिक्षित व्यक्ति इस प्रकार स्वाध्याय करें

अनुशासन-

सत्साहित्य को सदैव -**धीमी गति से** और **समझ-समझ कर** पढ़िये।
-**श्रद्धापूर्वक** पढ़िये।

अभ्यास

(१) प्रतिदिन, जब मन शान्त हो तब-
- ५ मिनिट या १ पृष्ठ ध्यानपूर्वक सत्साहित्य को पढ़िये।
- पश्चात् विचारपूर्वक महत्वपूर्ण कथनों तथा मार्मिक वाक्यों को लाल कलम से रेखांकित कीजिये।
- अब केवल रेखांकित वाक्यों को उपरोक्त **अनुशासन** के साथ पुनः पढ़िये।

यह सत्साहित्य का **अध्ययन है।**

(२) ५ मिनिट गहराई से विचार कीजिये कि जीवन की गुणवत्ता (क्वालिटी) को उठाने में -यह मार्गदर्शन आपके लिए कितना उपयोगी हो सकता है।
- अब निश्चित कीजिये कि अभी आपकी क्षमता इसके कितने अंश को व्यवहार में लाने की है। यह **मनन** है।

(३) ५ मिनिट गंभीर विचार कीजिये कि, जो बातें आपको उचित और उपयोगी लगीं और जो आपकी क्षमता के भीतर हैं, उन्हें आप अपनी दिनचर्या में -
- कब-कब व्यवहार में लाया करेंगे।
- किस प्रकार व्यवहार में लाया करेंगे। यह **चिन्तन** है।

स्वाध्याय के उपरोक्त तीन अंगों में से प्रारम्भ में जितना करते बने उतना ही करिये। फिर क्रमशः बढ़ाते हुए तीनों अंगों का अभ्यास करिये।

(२) शिक्षित और अशिक्षित दोनों इस प्रकार स्वाध्याय करें-

अनुशासन-

आपने एक दुर्गुण त्यागने और एक सद्गुण को अपने जीवन में जोड़ने का संकल्प लिया ही होगा। **न लिया हो तो अब अवश्य ले लीजिये।** जीवात्मा की

अभ्यास

जब मन शान्त हो तब–

- अपने संकल्प को प्रतिदिन कम से क्रम एक बार दुहरा लिया करें।
- फिर विचार किया करिये कि "क्या मैं अपने इस संकल्प का निष्ठापूर्वक पालन कर रहा हूँ?"
- विचार करिये कि "यदि कहीं चूक हो रही है, तो मेरी किस मानसिक दुर्बलता के कारण हो रही है? इस दुर्बलता को किस प्रकार जीतूँ?"
- "अपने संकल्प से चूक रहे हैं" इस पर ग्लानि का अनुभव करिये।
- "फिर कोशिश करेंगें" यह कहकर अपना उत्साह जगाइये।
- अपने संकल्प को दृढ़ता के साथ फिर दुहराइये।
  निश्चय करिये कि भविष्य में चूकने का अवसर आने पर
  "तत्काल अपने संकल्प का स्मरण करेंगे।"

४. संयम

संयम का अर्थ है "अपनी अनुचित-अहितकारी इच्छा, विचार और व्यवहार पर लगाम लगाना। इस प्रकार बची शक्ति को उचित दिशा में लगाना।"

संयम क्यों करें?

(१) संयम व्यक्ति को उच्छृंखल और पराश्रित जीवन जीने से बचाता है।

(२) संयम व्यक्ति के धन, बल आदि साधनों को व्यर्थ और अनुचित कार्यों में नष्ट होने से बचाता है।

(३) संयम के कारण बच गई शक्तियों को सृजन की दिशाओं में लगा कर साधक अपने व्यक्तित्व को ऊँचा उठा सकता है।

चार प्रमुख संयम हैं– १. इन्द्रिय संयम २. विचार संयम ३. अर्थ संयम ४. समय संयम

इन चार संयमों में शेष सभी संयम समाए हुए हैं। प्रारम्भ में इन संयमों के छोटे-छोटे अभ्यास करना चाहिये। सफल होने पर फिर क्रमशः बड़े अभ्यास साधना चाहिये। इन चार संयमों को साधने की प्रारम्भिक विधियाँ नीचे दी जा रही हैं। इन्हें एक-

४.(१) इन्द्रिय-संयम

मनुष्य के स्वास्थ्य को मिट्टी में मिला देने की जिम्मेदार दो ही प्रमुख इन्द्रियाँ हैं-जीभ और जननेन्द्रिय। जिन्हें स्वस्थ शरीर की इच्छा हो वे इन पर समुचित नियन्त्रण, अर्थात् संयम बरतें।

(अ) उपवास और (ब) ब्रह्मचर्य, ऐसे दो सरल देवव्रत हैं, जो संयम का अभ्यास आरम्भ करने में बड़े उपयोगी हैं। अनुशासनों के साथ इन दो व्रतों को गुरुवार या रविवार को किया करें। अपनी **श्रद्धा** के अनुसार आप अन्य दिन भी चुन सकते हैं।

४.(१) -१. उपवास

उपवास 'देव' की प्रसन्नता के लिए किया गया 'देवव्रत' है। अतः **मानसिक उपवास** और **शारीरिक उपवास** दोनों एक साथ साधिये। प्राण और मन की जोड़ा है। उपवास से प्राण शिथिल होते हैं तो मन की चंचलता भी कम हो जाती है। तब वह सरलता से वश में लाया जा सकता है।

अनुशासन-

(१) **शान्त मन** से, **प्रसन्न चित्त** से उपवास कीजिये।
(२) **श्रद्धा-भाव** को दिन भर चैतन्य रखिये।
(३) श्रेष्ठ कर्मों में लगातार **व्यस्त** रहिये।

अभ्यास

मानसिक उपवास-

(१) उपवास के दिन प्रातः काल ही यह दो संकल्प लीजिये-
- **"आज खाने की लिप्सा को शान्त रखेंगे।"**
- **" वाणी को विनम्र बनाए रखेंगे।"**

(२)- दिन भर पवित्र विचारों में ही रहिये।
- यदि अनुचित-अपवित्र विचार उठें तो उन्हें **तत्काल** भगवन्नाम-रटन से

शारीरिक उपवास–

अपनी सामर्थ्यानुसार निम्नांकित में से कोई एक प्रकार का उपवास करिये:–

(१) दिन में एक बार भोजन करिये। भोजन गरिष्ठ न हो। सात्विक हो, सुपाच्य हो। फिर कुछ नहीं खाइये। पर बच्चे व वृद्ध एक बार दूध भी ले लें।

(२) **अथवा,** पूरे दिन भोजन नहीं करिये। दिन में एक बार फल या शाक का आहार लीजिये।

(३) **अथवा,** प्रतिदिन के समान दोनों समय पूरा भोजन करिये। पर भोजन या पेयं पदार्थों में **नमक और मीठा नहीं रहे। यह सर्वोत्तम अस्वाद व्रत है।**

अधिक भावनाशील अपने हिस्से का बचा हुआ अन्न धर्मघट में, या उसका मूल्य गुल्लक में डाल दें। अथवा किसी दुखी या असमर्थ को दे दें।

४(१) २. ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य–साधना भी 'देव' की प्रसन्नता के लिए किया गया 'देवव्रत' है। इसलिए **मानसिक ब्रह्मचर्य** और **शारीरिक ब्रह्मचर्य** दोनों एक साथ साधिये।

अनुशासन–

(१) **शान्त मन से, दृढ़ चित्त** से ब्रह्मचर्य साधियें।

(२) उपवास के दिन ब्रह्मचर्य भी साधिये।

अभ्यास

मानसिक ब्रह्मचर्य–

(१) उपवास के संकल्पों के साथ यह तीन संकल्प लीजिये–

"आज काम–वासना सम्बन्धी बातें – वाणी बोलेगी नहीं,
– मन सोचेगा नहीं,
– चित्त इच्छा करेगा नहीं।"

(२) केवल कर्म से ही नहीं, विचार और भावना से भी दिन भर ब्रह्मचर्य का पालन कीजिये। **यही वास्तविक ब्रह्मचर्य–व्रत है।**

(३) दिन भर व्यस्त रहिये। कोई काम न हो तो स्वास्थ्य,योग और धर्म संबंधी

शारीरिक ब्रह्मचर्य-

(१) पूर्णरूपेण शारीरिक ब्रह्मचर्य साधिये।
(२) विनम्र भाव से कोई सेवा-कार्य इस दिन अवश्य कीजिये। तब ब्रह्मचर्य सरलता से सध जायेगा।

४. (२) विचार-संयम

विचार-संयम क्यों करें ?

(१) **विचार से कर्म होता है। कर्म से संस्कार बनते हैं और संस्कार से जीवात्मा की सद्गति-दुर्गति निश्चित होती है। इसलिए विचारों पर संयम रखने में ही भलाई है।**
(२) मन में '**तेज**' का वास होता है। आपका किसी पर कितना प्रभाव पड़ेगा, यह आपके मन के **तेज** पर निर्भर करता है। ध्यान रखिये कि –

- कपट, द्वेष आदि के काले व गन्दे विचार इस तेज को **धुँधला** करते हैं।
- पवित्रता, उदारता, सेवा आदि के विचार इस तेज को **बढ़ाते** हैं।

इसलिए, अपने विचारों पर नियन्त्रण रखना और
उन्हें उजली दिशा में मोड़ना जरूरी है।

अनुशासन-

- मन को, और वाणी-आँखें आदि इन्द्रियों को स्वतन्त्र न छोड़िये।
- **उन पर विवेक की सतर्क दृष्टि** रखिये कि वे कहाँ रम रहे हैं।

अभ्यास

अपने जीवन पर गहराई से दृष्टि डालिये। बहुत सोच-समझ कर निश्चित कीजिये कि पवित्रता-उदारता आदि में से ऐसा कौन-सा सद्गुण है जिसके बिना आपकी आत्मिक प्रगति को सबसे अधिक नुक्सान पहुँच रहा है। इस सद्गुण **को इसी** जीवन में प्राप्त करने का **लक्ष्य** बनाइये।

जब भी कोई अनुचित या गन्दा विचार आपके मन में उठे तब-

(१) - तत्काल अपने **लक्ष्य** का स्मरण कीजिये।
- शान्त और दृढ़ भाव से अपने आप को टोकिये।
- जितनी बार उठे उतनी बार टोकिये। क्रमशः सुधार अनुभव होगा।

(२) वाणी जो बोले उसमें, आँखें जो देखें उसमें, कान जो सुनें उसमें, हाथ जो स्पर्श करें उसमें अपने **लक्ष्य-सद्गुण** (पवित्रता या करुणा या सेवा) को जोड़ कर बोलने-देखने या सुनने-स्पर्श करने का अभ्यास किया करिये। कुविचार व दुर्भाव तत्काल कट जाएँगे।

(३) सत्साहित्य का अध्ययन-मनन-चिन्तन किया कीजिये। यह विचार-संयम का सर्वश्रेष्ठ साधन है। श्रेष्ठ जनों का संग करना-यह भी अच्छा साधन है।

(४) चिन्तन को सृजनात्मक विचारों और क्रियाकलापों की ओर मोड़िये।इससे आपका हित तो सधेगा ही, आपके परिवार और समाज का भी भला होगा।

४.(३) अर्थ - संयम

अर्थ-संयम क्यों करें ?

अर्थ-संयम करने से -

- 'क्या उचित है, क्या उचित नहीं है' इस सद्बुद्धि का विकास होता है।
- सरल-सहज जीवन जीने की चाह जागती है। इसी में जीवन का सौन्दर्य है।

अनुशासन-

"क्या करें, क्या न करें" यह निर्णय मन से नहीं **विवेक** से कराइये।

अभ्यास

(१) मुण्डन, विवाह, मृत्युभोज अथवा अन्य समारोह आदि में उन बेतुकी परम्पराओं की नकल मत कीजिये जो फिजूलखर्च कराती हैं।

(२) नशा, व्यसन, फैशन में भी फिजूलखर्च से बचिये।

(३) शान्तता-दृढ़ता-साहस इन तीन गुणों को धारण करिये।
अपना साहस जगाइये। शान्त और दृढ़ चित्त से घोषणा कर के उपरोक्त फिजूलखर्चों को अपने परिवार में बन्द कर दीजिये।

(४) **सबसे बड़ी बात-अपनी धनवन्तता को जग-जाहिर करने की इच्छा का शमन करिये।**

४.(४) समय-संयम

"जो कार्य बिल्कुल अनावश्यक हैं अथवा हानिकारक हैं उनमें समय को नहीं गँवाना, उस समय को उपयोगी व ज्ञानवर्धक कार्यों में लगा देना" यह समय-संयम है।

समय-संयम क्यों करें ?

जीवन की अवधि बहुत लम्बी नहीं होती, जब कि परलोक और इस लोक को साधने के कार्य बहुत हैं। **इसलिये समय पर पकड़ रखना आवश्यक है।**

अनुशासन-

"**समयबद्ध जीवन जियेंगे**" इस अभिलाषा को जगाइये।

अभ्यास

(१) आलस्य और प्रमाद में समय न गँवाएँ। यह आत्मघात करने के समान है।

(२) जो विचार और कर्म मन को मैला करते हैं, कुसंस्कार उपजाते हैं, उनमें समय नष्ट मत करिये। उन्हें दृढ़ चित्त से और संकल्पपूर्वक त्याग दीजिये।

(३) रात्रि को सोने से पहले अगले दिन के लिये आवश्यक कार्यों को निश्चित कीजिये। अगले दिन इसका कड़ाई से पालन कीजिये।

(४) दूसरों से किये गए समय-संबंधी अपने वायदे पूरी जागरूकता से निभाइये।

(५) इस समयबद्धता से ढेर समय हाथ लगेगा। इस समय को अपना व दूसरों का ज्ञान व कौशल बढ़ाने में, अन्य उपयोगी कार्यों में, सेवा-सत्कर्म में लगाइये। पुनः ध्यान दीजिये -**जीवन की अवधि बहुत लम्बी नहीं होती।**

५. सेवा (आराधना)

'अपने समय-श्रम-धन-बुद्धि का, अर्थात अपनी क्षमता और साधन का एक अंश उदारतापूर्वक दूसरों के हित में लगाना'-यह सेवा है। 'भज सेवायाम्', सेवा ही वास्तविक भजन है। **सेवा विराट्-रूप ब्रह्म की आराधना है।** इसलिये ईश्वर की निकटता का अनुभव सेवा के द्वारा ही हो सकता है।

सेवा आध्यात्मिकता का व्यावहारिक रूप है। सरल भाषा में इसे यों कहें कि सेवा करने पर ही अध्यात्म सिद्ध होता है। रामचरितमानस भी "परहित सरिस धरम नहीं भाई" कह कर सेवा को सबसे ऊँचा स्थान देता है। इसलिये जो साधक आध्यात्मिक उन्नति की इच्छा रखते हैं, उन्हें उपासना-साधना के साथ-साथ सेवा-धर्म को भी अनिवार्य रूप से साधना चाहिये।

सेवा के सरल किन्तु अत्यन्त उपयोगी चार मार्ग हैं। ये हैं- **(१)देवालय-सेवा (२) मानव-सेवा (३)राष्ट्र-सेवा (४) महाकाल-सेवा।** इन्हें अपनाइये और अध्यात्म को अपने लिये सिद्ध कीजिये।

अनुशासन-

सेवा के इन चार मार्गों के अनुशासन एक-समान हैं। यथा-

जब सेवा करें तब-

(१) सेवा करने का **अहंकार मत करिये।**

(२) "एहसान कर रहे हैं" कदापि ऐसी **दूषित मनोवृत्ति न पनपने दीजिये।**

(३) अपने लिये कोई **लाभ पाने की इच्छा नहीं रखिये।**

५.(१) देवालय-सेवा (सुविधा-संवर्धन)

देवालय-सेवा क्यों करें ?

(१) अपनी 'लघुता' और ईश्वर की 'सर्वसमर्थता' का बोध होता है, तो अहितकारी घमण्ड टूटता है।

(२) अपने में विनयशीलता आती है, तो सभी मनुष्यों के प्रति समता-भाव जागता है।

अनुशासन- पूर्वानुसार।

अभ्यास

(१) देवालय के भीतर-बाहर के जाले निकालिये ,बुहारी लगाइये, फर्श धोइये -पोंछिये। इसमें लज्जा का अनुभव नहीं कीजिये। भगवत -सेवा का गौरव अनुभव कीजिये।

(२) देवालय की अन्य व्यवस्थाओं की जानकारी लीजिये। सहयोग दीजिये।

(३) देवालय में "जन-जागरण" संबंधी गतिविधियाँ आरम्भ कराने में विशेष रुचि लीजिये। वे पहले से चल रही हों, तो उनमें सक्रिय सहयोग दीजिये।

प्रसन्न-मन देवालय में सेवा करने से भगवान सन्तुष्ट होते हैं।

५.(२) मानव-सेवा (पीड़ा-निवारण)

मानव-सेवा क्यों करें ?

मानव-सेवा करने से-

(१) "भगवान ने सर्वोत्तम मानव-योनि दी है तो कर्त्तव्य भी सौंप रखे हैं" इस सत्य का बोध होता है।

(२) करुणा, उदारता, मानवीयता जैसी उत्तम भावनाएँ विकसित होती हैं।

(३) जीवात्मा स्वत: ही परमात्मा की ओर उन्मुख होने लगता है। यह बहुत बड़ी उपलब्धि है।

अनुशासन-

(१) "मानव-सेवा परमात्मा की सेवा है" इस **विश्वास** के साथ सेवा करिये।

(२) "इस विवश व्यक्ति की जगह यदि मैं होता (होती), तो मैं क्या चाहता (ती) ?" ऐसा **करुणा-भाव** जगाकर सेवा करिये।

(३) अन्य अनुशासन – पूर्वानुसार।

अभ्यास

(१) यदि आपके मित्रों में सेवा-भावी वैद्य-हकीम-डॉक्टर हों, तो उन्हें सप्ताह में एक दिन निःशुल्क सेवा के लिए अपने साथ गाँवों में ले जाया करिये।

(२) तुलसी, सोंठ, काली मिर्च, हल्दी, नीबू, आँवला आदि सर्वसुलभ वस्तुओं के प्रभावशाली औषधीय प्रयोग किसी वैद्य से लिखवा लीजिये। इनके पैम्फ्लेट छपाइये। मोटे कार्ड-शीट पर सैलोटेप से चिपकाइये। दो छेद कर मोटा धागा बाँधिये, ताकि टाँगे जा सकें।

इन्हें लेकर गाँवों में जाया करिये। खील पर एक-एक कार्ड-शीट प्रत्येक घर में टाँगिये। यह आयुर्वेद और मानव की उत्कृष्ट सेवा है।

(३) नेत्र-दान यज्ञ, कुष्ठ-निवारण आदि अभियान प्रायः ही आयोजित होते रहते हैं। स्वयं जाकर इनमें अपनी सेवाएँ दीजिये।

(४) **सेवा- निवृत्त शिक्षक,** प्राथमिक शाला में सुविधानुसार जाया करिये। बच्चों को निःशुल्क पढ़ाइये भी, और उनमें स्वच्छता-मीठी वाणी-शालीन व्यवहार आदि श्रेष्ठ आदतों का विकास भी करिये।

(५) **वृद्ध व्यक्ति,** वसीयत करिये कि उनकी मृत्यु के उपरान्त अमुक शासकीय अस्पताल उनके स्वस्थ अवयवों को निकाल लेने के लिए अधिकृत है, जिनका उपयोग गरीब मरीजों के लिए किया जाए। चयनित अस्पताल को भी अधिकार पत्र सौंप दीजिये।

(६) **सम्पन्न व्यक्ति,** प्रत्येक १२ हजार रुपये देकर एक रजिस्टर्ड ट्रस्ट बनाइये। रुपये बैंक में लम्बी अवधि के लिए जमा कीजिये। मिलने वाले ब्याज से प्राथमिक शाला की प्रत्येक कक्षा में पढ़ने वाली गरीब कन्याओं के लिये फीस-स्टेशनरी-वस्त्र आदि की व्यवस्था की जाती रहे। खर्च की गई कुल राशि का ५ से १० प्रतिशत शाला-प्रमुख व कक्षा-शिक्षकों को मानदेय देने की व्यवस्था कीजिये। तभी ट्रस्ट चलेगा।

(७) तन से करिये। मन से करिये। धन से करिये। वाणी से करिये। व्यवहार से करिये। प्रार्थना से करिये। प्रभु ने जिसे जो सामर्थ्य दे रखी हो उससे सेवा करिये। विनम्रता, श्रद्धा और उदारतापूर्वक सेवा करिये।

निस्वार्थ मानव-सेवा से भगवान प्रसन्न होते हैं।

५.(३) राष्ट्र-सेवा

"हमारे विचार राष्ट्र के न्यायसंगत हितों के अनुरूप बनें। राष्ट्र की गरिमा और सांस्कृतिक छबि को उजला बनाए रखने की हममें सद्भावना और उमंग उठे। हमारे कर्म राष्ट्र की प्रगति में सहायक हों," **यह राष्ट्रीय-भावना है।**

"अपनी तथा अन्य नागरिकों की विचार-भावनाओं को इन दिशाओं में मोड़ना, इनके अनुरूप स्वयं कर्म करना, तथा अन्य व्यक्तियों को प्रेरित करना," **यह राष्ट्र-सेवा है।**

सेवा के अनेक उपाय नीचे सुझाए गए हैं। इन्हें क्रमशः उपयोग में लाइये और अपनी जन्म-भूमि की सेवा कीजिये। जन्म-भूमि स्वर्ग लोक से निश्चय ही अधिक श्रेष्ठ है। **जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।**

राष्ट्र-सेवा क्यों करें?

इसलिए करें कि—

(१) राष्ट्र के हित में ही व्यक्ति का और सभी जनों का हित समाया हुआ है।

(२) दूसरे राष्ट्र आर्थिक या राजनैतिक रूप से हमारे राष्ट्र को, अर्थात् हम नागरिकों को, अपना गुलाम न बना सकें।

(३) "हम अपनी प्रगति की राह को और दिशा को स्वयं और स्वतंत्र रूप से निर्धारित करें," सशक्तता की यह स्थिति निरन्तर बनी रहे। अन्य राष्ट्र अपना स्वार्थ साधने के लिए हस्तक्षेप न कर सकें।

(४) जिस कल्याणकारी देव-संस्कृति में हम जन्मे, पले और बढ़े हैं, उस पर अन्य विकार-युक्त संस्कृति हावी न होने पाये।

(५) "सेवा, सत्कर्म और सहयोग भारत की पहचान है," हम अपनी इस पहचान और प्रतिष्ठा को बनाए रखें।

(६) "वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः" इस वचन की पूर्ति के लिए राष्ट्र-सेवा करें।

अनुशासन- पूर्वानुसार।

अभ्यास

जो व्यक्ति तथा जो राष्ट्र आत्म-निर्भर है और आत्म-विश्वासी है,

की रक्षा करता है और उसे परिपुष्ट करता है, उसे कोई नीचे नहीं गिरा सकता। इसलिये राष्ट्र-सेवा के लि‹ ् उन दृष्टिकोणों को और कार्यों को चुनना चाहिये और करना चाहिये जो उसके **नाग‹ िकों में आत्म-निर्भरता, आत्म-विश्वास और संस्कृति-निष्ठा को बढ़ाते हों।** जैसे -

(१) अपने बच्चों को भारतीय संस्कृति और स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास रोचक और मार्मिक प्रसं‹ों के रूप में विस्तारपूर्वक सुनाया कीजिये। उन पर गर्व करने की भावना को बच्चों में विकसित कीजिये।

(२) अपने बच्चों के मै‹ ेयी-करुणा-प्रज्ञा तथा आदित्य-विश्वामित्र-विक्रम जैसे श्रेष्ठ सांस्कृतिक-‹ौराणिक नाम रखिये। परिचितों को भी ऐसा करने की प्रेरणा दीजिये।

(३) अपने परिवार में दादी-काकी और चाचा-मामा आदि सम्बोधनों को पुनः प्रचलित कीजिये। 'माँ' और 'पिताजी' सम्बोधनों में झलकती आत्मीयता "ममी-डैडी" में ढूँढ़े नहीं मिलती।

(४) अपने बच्चों को राष्ट्र-भाषा हिन्दी और देव-भाषा संस्कृत के प्रति निष्ठावान बनाने के लिए **प्रारम्भ से ही** इनके शिक्षण की व्यवस्था कीजिये।

(५) भारतीय संस्कृति और देव-भाषा संस्कृत के प्रचार-प्रसार में अपने समय, श्रम, बुद्धि एवं धन का एक अंश निरन्तर लगाया करिये। यह राष्ट्र-सेवा का उत्कृष्ट उपाय है।

(६) करुणा, सेवा और सहयोग भावना को चैतन्य बनाए रखने के कुछ व्यावहारिक उपाय पूर्व पृष्ठों में बताए गये हैं। इन्हें स्वयं अपनाइये और परिवारजनों, विशेषतः बच्चों से प्रयोग कराइये।

(७) टी.वी., सिनेमा, प‹ पत्रिकाओं के माध्यम से अभद्र और उत्तेजक प्रसारणों पर रोक लगाने के लिए जनमत को इस दिशा में प्रेरित किया कीजिये। कम से कम अपने और परिचितों के परिवारों को इन विकारों से बचाने के उपाय तत्काल अपनाइये। न तो ऐसी पत्र-पत्रिकाएँ खरीदिये, न ही ऐसे प्रसारण देखिये-सुनिये जो अश्लील हों।

(८) कोई वस्तु स्वदेशी और विदेशी दोनों प्रकार की बिकती हो, तो स्वदेशी ही खरीदिये।

(९) यदि आप नौकरी करते हैं, तो समय पर अपने कर्त्तव्य पर पहँचिये। अपने

समय तक, और मन लगाकर कर्त्तव्य करना उत्तम कोटि की राष्ट्र-सेवा है।

(१०) यदि आप व्यवसाय करते हैं, तो 'मिलावट' करने के अनैतिक और पापपूर्ण कर्म से सदैव बचिये। यह जानते हुए कि मिलावट करने से निर्दोष लोगों के स्वास्थ्य को हानि पहुँचेगी, इस निन्दनीय कर्म को करना अपनी जीवात्मा को दुर्गति में डालना है। ऐसा महँगा व्यापार मत करिये।

बच्चा आये या समझदार, सबको एक-दाम बताइये। सही तौल तौलिये। इससे आपकी प्रतिष्ठा भी बढ़ेगी और व्यापार भी बढ़ेगा।

(११) दुष्प्रवृत्ति (नशा, व्यसन, अपव्यय, गन्दगी, कुरीतियाँ, भ्रष्टाचार आदि) उन्मूलन तथा सत्प्रवृत्ति (शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण संरक्षण, स्वावलम्बन, ग्रामविकास, स्वच्छता, चिकित्सा आदि) संवर्धन हेतु अपने समय, प्रभाव, ज्ञान, पुरुषार्थ एवं धन का एक अंश नियमित रूप से लगाकर राष्ट्र को सुसंस्कृत, समुन्नत एवं सम्पन्न बनाने का पुण्य-प्रयोजन पूरा किया कीजिये।

५.(४) महाकाल-सेवा (पतन-निवारण)

अज्ञान के अन्धकार में भटक रही मानव-जाति को सद्ज्ञान के आलोक में लाने का प्रयास करना, इन्सान और भगवान की श्रेष्ठतम सेवा है।

यह ज्ञान-यज्ञ है। ज्ञान-यज्ञ ही महाकाल की सेवा है।

महाकाल-सेवा क्यों करें?

(१) मनुष्य मनुष्यता खोता जा रहा है। समाज टूट रहा है। विश्व बारूद के ढेर पर बैठा हुआ है। यह अत्यन्त विषम काल है। इसलिए महाकाल-सेवा करें।

(२) सभी दिशाओं में हो रहे पतन और विनाश से बचने का केवल एक उपाय है- '**मनुष्य के सोचने और व्यवहार की संकीर्ण मनोवृत्ति को बदलना**'

"मनुष्य मर्यादाओं को जाने। उनका पालन करे।"

"मनुष्य, मनुष्य से सहयोग करे। दूसरों को भी जीने दे।"

यह मनोवृत्ति विकसित हो, इसलिये महाकाल-सेवा करें।

अनुशासन- पूर्वानुसार।

अभ्यास

(१) "मैं बदलूँ तब युग बदलेगा। मैं सुधरूँ तब युग सुधरेगा," यह तथ्य पहले स्वयं को समझायें। स्वयं के विचारों और व्यवहारों को पहले बदलें।

(२) नित्य नियमपूर्वक स्वाध्याय करें। फिर मनन-चिंतन करें। उसे व्यवहार में लाने का अभ्यास भी किया करें।

(३) अपने संबंधियों, मित्रों-परिचितों को भी आत्मशोधन की यह विशेष विधि समझाएँ। इस हेतु अपने समय और ज्ञान को उदारतापूर्वक लगाएँ।

(४) पाँच नए सदस्य बनाकर 'झोला पुस्तकालय' चलाएँ। नित्य एक सदस्य से मिलें। उससे आत्मीयता बढ़ायें। पढ़ने हेतु सत्साहित्य दें। चर्चा करें।

(५) इन्हीं पाँच सदस्यों का 'स्वाध्याय-मण्डल' बनाएँ। साप्ताहिक चर्चा-गोष्ठी करें। सभी बोलने में रुचि लें, सभी को बोलने का अवसर दें।

(६) साप्ताहिक ज्ञान-गोष्ठी आयोजित करें। इसमें आत्मशोधन-आत्म निर्माण-परिवार निर्माण-समाज निर्माण आदि पर प्रवचन करें-कराएँ। पुराने सदस्य नये सदस्यों को प्रयत्नपूर्वक गोष्ठी में लाया करें।

(७) इस ज्ञान-यज्ञ में नित्य एक घंटा अथवा साप्ताहिक अवकाश में अधिक से अधिक समय लगाएँ।

(८) साधना-आन्दोलन के साधना-पदों के संग जुड़ी विचारणा और भावना को समझाने तथा अभ्यास में लाने के लिए लोगों को प्रेरणा दिया करें।

(११) विश्व-कल्याण की भावना के साथ "साप्ताहिक सामूहिक जप-प्रार्थना" अधिक से अधिक मोहल्लों-कस्बों-ग्रामों में आयोजित कराने के विशेष प्रयास कीजिये।

(१२) विश्व कल्याण हेतु "अखण्ड जप-दीपयज्ञ" के गुणवत्तापूर्ण आयोजन कराने हेतु व्यापक जन-सम्पर्क दौरे किया कीजिये।

(१३) वृक्षारोपण (पीपल-नीम-बिल्व-बरगद, तुलसी रोपण) जैसे रचनात्मक कार्यक्रमों को विशेष रुचि और प्रयास से अवश्य सम्पन्न करायें।

उपरोक्त कार्यक्रमों तथा अन्य उपयुक्त कार्यक्रमों में से जिनसे जो

उपासना-कार्यक्रमों की विवेचना

१. शान्त मन (विवेचना)

यह सब का निजी अनुभव है कि पद-धन-सत्ता, तथा मोह-वासना-आसक्ति, ये एषणाएँ कभी शान्त और तृप्त नहीं होतीं। पूजा-उपासना करने बैठते हैं, तो यह सब वहाँ भी घुस आती है, और पूर्ति के लिए कुरेदती रहती है।

जब तक जीवित हैं, तब तक यह गोरखधन्धे चलते ही रहेंगे। इसलिए इन भौतिक सम्पदाओं के लिए ललक और चिन्ता की उपेक्षा करने का हमें नित्य अभ्यास करना चाहिये, भले ही वह थोड़े समय के लिये हो। इन उत्पात मचाने वाली कुरेदों की उपेक्षा करेंगे, तो मन पर लगातार पडने वाला तनाव घटेगा और वह शान्त होने लगेगा।

भौतिक सम्पदा ही महत्त्वपूर्ण नहीं है। उस ओर भी हमें ध्यान देना चाहिये जहाँ से दैवी-सम्पदा प्राप्त होती है, और जो मृत्यु को लाँघ कर जीवात्मा के साथ जाती है।

इसलिए हमें **बहुत शान्त मन** से परमात्मा की उपासना करना चाहिये।

२. आत्मीय-भावना (विवेचना)

प्रायः हम सभी ने स्थूल सुख-सुविधाओं और सम्बन्धियों के घेराव को सुखी-जीवन मान रखा है। अपनी इस फाँस के लिए हम पूरा जीवन खपा देते हैं। रोज देखते हैं कि मरने वाला एक भी व्यक्ति अपने साथ कुछ भी लेकर नहीं जा रहा है, न तो धन व पद न ही सम्बन्धी। अपना शरीर भी वह यहीं छोड़ जाता है। इस पर भी इनके प्रति हमारे मोह व आसक्ति में तनिक भी कमी नहीं आती। हमने अपने को सुख से नहीं, वरन् इस भारी अज्ञान से घेर रखा है।

भाई, यहाँ सदा-सदा के लिए कुछ भी प्राप्त नहीं होता। यहाँ कोई

सम्बन्धी मिल तो जाते हैं, पर वे सब भी तो अपने-अपने कर्मों की राह पर जा रहे हैं। इनसे मोह करेंगे, तो केवल बिछुड़ने का दुःख ही हाथ लगेगा।

इन कठोर तथ्यों पर हमें बार-बार विचार करना चाहिये।

इस धावमान जगत में स्थिर ध्रुव तारा, बस, एक ही है- परमात्मा। वही एक मात्र सम्पत्ति है, सम्बन्धी है और आश्रय है। वही एक मात्र मार्गदर्शक है, अभिभावक है और साथी है। अतः समझदारी इसमें है कि हम जगत के प्रति केवल कर्त्तव्य-भाव रखें, और केवल जगत्पति के प्रति प्रीति-भाव रखें।

इसलिये हम परमात्मा का जब भी स्मरण करें, **आत्मीय-भाव** से करें।

३. षट्कर्म (विवेचना)

कार्य को ठीक तरीके से करने के लिए सबसे पहले अपने आपको तैयार करना पड़ता है। खिलाड़ी खेलने के पहले अपने शरीर को चैतन्य (वार्म-अप) करता है। अध्ययन करने वाला पहले अपने मन को शान्त और एकाग्र करता है। उपासना भी ऐसा ही पुरुषार्थ है। उपासना के लिए व्यक्ति स्वयं को **षट्कर्म** के द्वारा तैयार करता है।

षट्कर्म की प्रक्रिया की विवेचना उपासना संबंधी पुस्तकों में विस्तार पूर्वक की गई है। इस हेतु गायत्री-तपोभूमि मथुरा और शान्तिकुञ्ज-हरद्वार के प्रकाशन देखना चाहिये।

४. पाठ (विवेचना)

(१) 'पाठ' में ऋषियों के आप्त वचन होते हैं। उसका ध्यानपूर्वक और विश्वास पूर्वक पठन-मनन करने से सदैव ही मन को उजला और हृदय को उदार बनाने की प्रेरणा मिलती है। पश्चात् 'पाठ' को जब प्रतिदिन के व्यवहारों में क्रमशः लाने लगते हैं तो श्रेष्ठ स्वभाव-संस्कार का निर्माण होने लगता है, और इस प्रकार राह-भटकों को भी ईश्वर की ओर ले जाने वाला मार्ग मिल जाता है। **इसलिए नित्य नियमपूर्वक 'पाठ' करना चाहिए।**

है, मन को एकाग्र होने का अभ्यास भी हो जाता है। उत्तम मानसिकता और एकाग्रता, यह दो गुण प्रभावी जप-ध्यान करने में बहुत सहायक होते हैं। अतः उपासना से पहले **'पाठ' करना बहुत हितकारी है।**

(३) जो व्यक्ति युग-निर्माण मिशन से जुड़े हैं, या जो श्रेष्ठ प्रेरणाएँ पाने के इच्छुक हैं, उनके लिए **'हमारा युग निर्माण सत्संकल्प'** के १८ सूत्र गीता के १८ अध्याय के समतुल्य ही है। 'सत्संकल्प' वेदमूर्ति तपोनिष्ठ श्रीराम शर्मा आचार्य जी की अनुभव-सिद्ध विचारधारा और जीवन जीने की कला का सार-संग्रह है। 'सत्संकल्प' उन महासत्ता का शब्द-शरीर है। इसलिये इस शब्द-शरीर से नित्य सम्पर्क करना, मार्गदर्शन प्राप्त करना और अपने विचारों को चैतन्य बनाए रखना हम शिष्यों का और प्रगति के इच्छुकों का प्रथम कर्त्तव्य है।

(४) पाठ करने की सही विधि-

- 'पाठ' की सामग्री ऋषि-महामानव के आध्यात्मिक अनुभवों का निचोड़ होती है। इसलिये उसके प्रत्येक शब्द और वाक्य पर **अटूट श्रद्धा** और **अखण्ड विश्वास** रखते हुए 'पाठ' करना चाहिए।
- केवल पढ़ लेने से नहीं, समझ में आने पर ही मन पर प्रभाव पड़ता है। इसलिये **धीमी गति से** और **समझ-समझ कर** पाठ करना चाहिये।

(५) अशिक्षित व्यक्ति सत्संकल्प का पाठ कैसे करें?

ध्यानपूर्वक विचार करें तो पाएँगे कि 'सत्संकल्प' का सम्पूर्ण सार दो शब्दों में समाया हुआ है ....**गायत्री और यज्ञ।**

'गायत्री' - याने उत्तम व कल्याणकारी चिन्तन करने वाली सद्बुद्धि।

'यज्ञ' - याने अपनी क्षमताओं को उत्तम कर्मों व सेवा-कार्यों में होम करना।

इसलिये कार्यकर्त्ता अशिक्षित और ग्रामीण क्षेत्र के आस्तिक जनों को पहले 'पाठ' करने का **पुण्य** समझाएँ, फिर पृष्ठ २५ पर 'अभ्यास' के अन्तर्गत दिया गया **''सद्भाव''** कण्ठस्थ करा दें।

इस 'पाठ' में भी सद्बुद्धि और सत्कर्म की प्रेरणा निहित है। अतः इस 'पाठ' को भी **धीमी गति से, समझ-समझ कर, और श्रद्धा-विश्वास** के साथ करने के लिए उन्हें समझाएँ।

५. जप-ध्यान (विवेचना)

"उपासना" क्या है?

(१) - "इष्टदेव के चित्र/मूर्ति के निकट अपने **शरीर को** बैठाइये।
- इष्टदेव के दिव्य गुणों का चिन्तन करके अपने **मन को** उनके निकट बैठाइये।
- इष्टदेव के प्रति श्रद्धा और आत्मीयता के भाव उमगा कर अपने **हृदय को** उनके निकट बैठाइये।"

इस प्रकार, अपने शरीर-मन-हृदय तीनों को भगवान के निकट बैठा कर उनका स्मरण करने को **उपासना** कहते हैं। उपासना भक्त और भगवान के बीच हो रहा भावना और चेतना का प्रवाह है।

(२) आप जप-ध्यान के 'अनुशासन' का ध्यान रखिये। उनका पालन करने पर यह प्रवाह बढ़िया ढंग से होता है।

(३) - जप करने के लिए एक मन्त्र चुन लीजिये। जैसे कि गायत्री महामन्त्र, पंचाक्षरी गायत्री, अपना इष्ट मन्त्र, अथवा भगवन्नाम।
- इसी प्रकार तीन में से अपनी रुचि-क्षमता का एक 'ध्यान' चुन लीजिये।

प्रभावी उपासना कैसे करें?

(१) सबसे पहले आप अपना मन शान्त करिये, और हृदय में इष्टदेव के प्रति आत्मीयता के भाव उपजाइये। पृष्ठ १३, १४, १५ पर इनकी विधियाँ देखिये।

(२) - तत्पश्चात् अपनी रुचि के अनुकूल 'ध्यान' के साथ जप आरम्भ करिये।
- बीच-बीच में इष्टदेव के प्रति अपनी श्रद्धा और आत्मीयता के भाव भी उभारते रहिये। जैसे कि 'मैं आपका ही अंश हूँ' या 'मैं आपकी शरण में हूँ।' या "भगवन्! मेरी अभिलाषाएँ आपको छोड़कर कहीं न जाएँ।"
- जब कभी मन उचटे, तो मन्त्र में कहे गये इष्टदेव के गुणों- विभूतियों का एक-एक करके स्मरण कीजिये, उसके अर्थ का चिन्तन कीजिये, और अर्थ के अनुसार 'ध्यान' एवं 'भाव' कीजिये।

की श्रेष्ठ विधि है। उपासना के उपरोक्त उपायों का अभ्यास एक-एक करके ही क्रमशः बढ़ाना चाहिए। जब यह उपासना-पद्धति अच्छी तरह से अभ्यास में आ जाती है, तब उपासक के स्वभाव-संस्कार सुधरने लगते हैं। वाणी में, चिन्तन में, व्यक्तित्व में श्रेष्ठता और तेजस्विता आने लगती है।

इसलिये आत्मिक प्रगति के लिए नित्य कम से कम १० मिनिट, "ध्यान और भाव" सहित उपासना अवश्य करना चाहिये।

किस मन्त्र या नाम का जप करें ?

(१) भगवान् के सभी 'नाम' एवं मन्त्र उत्तम हैं। गायत्री महामन्त्र है, सर्वोच्च वेद-मन्त्र है। सद्बुद्धि का प्रदाता है, मोक्ष का साधन है। यह मन्त्र सभी देवी-देवताओं के लिए जपा जा सकता है। अतः आपके जो भी इष्टदेव हों, उनकी महिमा का बखान करने के लिए गायत्री-महामन्त्र का जप बेहिचक किया कीजिये।

गायत्री के सिद्ध-पुरुष वेदमूर्ति श्रीराम शर्मा जी आचार्य का कथन है-

"विश्व का यह सबसे छोटा, किन्तु सबसे सारगर्भित धर्म शास्त्र, तत्वदर्शन एवं अध्यात्म-विज्ञान है।" यह मन्त्र है-

"ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।"

"उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अन्तरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करे।"

(२) यदि आप मन्त्र-जप नहीं कर पाएँ, तो प्रिय लगने लगने वाला कोई भी भगवन्नाम चुन लीजिये। यह नाम-जप किया कीजिये।

जप के संबंध में महाकवि 'रसखान' के इन पदों पर ध्यान दीजिये-

"क्षण भंगुर जीवन की कलिका
कल प्रात को मानो खिली न खिली।
कलि काल-कुठार लिये फिरता
तन नर्म पे चोट झिली न झिली।
ले ले हरि-नाम अरी रसना!
फिर अन्त समय में हिली न हिली।"

६. प्रार्थना (विवेचना)

(१) पूज्य गुरुदेव ने 'प्रार्थना' की प्रकृति को इस प्रकार स्पष्ट किया है-
"प्रार्थना अपने मन को समझाना है,
अपने आपे को बुहारना है।
प्रार्थना अपने आप से की गई गुहार है,
आत्मा की करुण चीत्कार है।"

(२) इन मार्गदर्शक वाक्यों से प्रार्थना के ४ लक्षण ज्ञात होते हैं-

(क) प्रार्थना संबोधित तो परमात्मा को की जाती है, पर वास्तव में वह अपने ही मन को समझाने-मनाने के लिए होती है।

(ख) प्रार्थना में दोषों-पापों से बचने की, जगत के लिए हितकारी बनने की सच्ची आकांक्षा झलकती है।

(ग) प्रार्थना में हृदय की आकुलता घुली होती है।

(घ) प्रार्थना परमात्मा के प्रति श्रद्धा के, विश्वास के, और शरणागति के भाव से ओतप्रोत होती है।

(३) प्रार्थना में यह विशेषताएँ हों तो वह स्वयं को तो झकझोरती ही है, अपने व विश्व के कल्याण के लिए परमात्मा की करुणा को भी जगा देती है।

अतः प्रार्थना के शब्दों के जड़ ग्रामोफोन के समान मत दुहराइये।
सच्ची आकांक्षा और शरणागति भाव से प्रार्थना करिये।

७. सूर्य अर्घ्य-अर्पण (विवेचना)

उपासकों बहुत स्पष्ट रूप से भगवान सूर्यनारायण और भगवती तुलसी की निम्नलिखित महत्ता जानना और अनुभव करना चाहिए :—

(१) - सूर्यदेव केवल आग का गोला नहीं है, परमात्मा के स्थूल और प्रत्यक्ष प्रतिनिधि हैं। वे जगत की आत्मा हैं, चेतना के उद्गम हैं, सृष्टि के जीवनदाता हैं।

- इसी प्रकार, तुलसी मात्र पौधा नहीं हैं, आद्या-शक्ति की स्थूल और प्रत्यक्ष प्रतिनिधि हैं। वे चैतन्य देवी हैं, आध्यात्मिक ऊर्जा-तरंगों की अद्भुत संचारकर्त्ता हैं।

(२) जब सही तरीके से उपासना की जाती है, तो वह श्रद्धा से भरी-पूरी

रखे जल में घुलता है, और जल अभिमन्त्रित हो जाता है।

(३) - जप-ध्यान के पश्चात् उपासक भगवान सूर्य को भक्तिपूर्वक अभिमन्त्रित जल का अर्घ्य अर्पित करता है। तब संचारकर्त्ता तुलसी माता के द्वारा जल में घुली श्रद्धा व भक्ति- भावना उसी क्षण उन्हें समर्पित हो जाती है।

- प्रतिदान के रूप में भगवान सूर्य का आशीष उपासक को, और यदि विश्व-कल्याण की भावना है तो सम्पूर्ण जगत को, प्राप्त होता है।

अतः अर्घ्य-अर्पण को उच्च कोटि का तथा प्रभावशाली धर्म-कृत्य जानिये, और इसे अत्यन्त विनम्रता एवं श्रद्धा-भाव से सम्पन्न किया करिये।

(४) तुलसी साक्षात '**सात्विकता**' हैं। वे देव संस्कृति का पोषण और अभिवर्धन करती हैं। इस सात्विकता से घर-घर को और वातावरण को भरना प्रत्येक संस्कृति-सेवक का पुण्यदायी धर्म-कर्त्तव्य है।

अतः हमें भगवती तुलसी की महत्ता लोगों को समझाना चाहिए, और "घर-घर में तुलसी-स्तम्भ बनवा कर तुलसी रोपण" कराने का धार्मिक अभियान अवश्य चलाना चाहिए।

८. दान-पुण्य (विवेचना)

१. दान-पुण्य करने का अर्थ है "**अपने धन-बुद्धि-समय का एक अंश जन-हित में अर्पित करना**"। अतः -

(१) अपनी आमदनी का कुछ भाग बेबसी में जीवन जी रहे लोगों की, तथा असमर्थों और दुखी लोगों की सहायता करने में नियमित रूप से लगाइये। यह उत्तम कोटि का धन-दान या **अंश-दान है।**

(२) अपनी आमदनी का कुछ भाग सत्साहित्य खरीदने में नियमित रूप से लगाइये। अज्ञान के अन्धकार में भटक रहे लोगों को इसे पढ़ने को दिया करिये। उनसे चर्चा कीजिये, समझाइये। समझा सकें, इसलिए पहले स्वयं ध्यानपूर्वक पढ़िये। यह अति श्रेष्ठ ज्ञान-यज्ञ या **ज्ञान-दान** है।

(३) अपने समय का कुछ भाग लोगों को ईश्वर-विश्वासी बनाने में, तथा सात्विकी एवं परोपकारी जीवन जीने की प्रेरणा देने में लगाइये। यह उच्च

ऐसे पुण्यप्रद दान ही परमात्मा को प्रसन्न करते हैं, और उनकी कृपा को आकर्षित करते हैं।

२. धर्मघट-विधि की अन्य क्रियाएँ:

(१) धर्मघट में अन्न अथवा बन्द गुल्लक में सिक्के डालने की विधि को कुछ सप्ताहों के बाद उलट दें। बच्चे को प्रोत्साहित करें कि अब वह आपकी अंजलि में अन्न दे, फिर अपनी अंजलि में ले। पहले वह प्रेरक वाक्य बोले, और अन्न (या सिक्का) अर्पित करे। उसके बाद वह आपसे प्रेरक वाक्य बोलने और अर्पित करने के लिए कहे।

(२) धर्मघट या गुल्लक जब भर जाए, तब उसी बच्चे के द्वारा दुखी-असमर्थों को या किसी सेवा-भावी संस्था को आदरपूर्वक दिलवा दिया करें।

३. **धर्मघट विधि का महत्त्व**- बच्चे छोटी आयु में जो बोलते, सीखते और करते हैं, जैसे संस्कार बना लेते हैं, वे सब जीवन भर उनमें बने रहते हैं। इसलिए यदि वे नित्य और लम्बे समय तक **"दूसरों को भोजन पहले, अपना भोजन बाद में"** बोलते रहेंगे, और अपनी छोटी-सी अंजलि से अन्न-दान भी करते रहेंगे, तो उनमें श्रेष्ठ संस्कारों का विकास होगा, और वे जीवन भर करुणावान, उदारचित्त तथा मातृ-पितृ भक्त बने रहेंगे।

वर्तमान युग में जब बच्चे सामाजिक-भावना से कटते जा रहे हैं, और अपने माता-पिता के प्रति कठोर व क्रूर होते जा रहे हैं, तब सद्गुण- सद्व्यवहार से भरे-पूरे अपने बच्चों को देखकर आप निश्चय ही सन्तोष और प्रसन्नता अनुभव करेंगे।

छोटे से दिखने वाले इस महान् धर्मकृत्य के द्वारा (१) आत्म-कल्याण की (२) जन-कल्याण की (३) अपनी सन्तान के संस्कार-निर्माण की, यह तीन बड़ी प्रक्रियाएँ एक साथ सम्पन्न हो रही हैं। अतः आप इस श्रेष्ठ धर्म-कृत्य को अपने परिवार में अवश्य आरम्भ करिये, और परिचितों को समझा कर उन्हें भी अपने बच्चों के संस्कार-निर्माण के लिए प्रेरित करिये।

यह घर के केवल एक बच्चे के संस्कार-निर्माण की बात नहीं है। बड़े बच्चे को अन्न-अर्पण करते देखकर छोटे बच्चों में भी वैसा ही करने की उमंग उठती हैं।

'दिन के शेषकाल' के-

साधना-कार्यक्रमों की विवेचना

१. मन्त्र-लेखन (विवेचना)

(१) मन्त्र-जप की अपेक्षा मन्त्र-लेखन में शरीर के अधिक अवयव भाग लेते हैं। आँखें और हाथ, शरीर और बुद्धि की शक्ति, मन की लगातार एकाग्रता और उत्तमता, इन सबको चैतन्य रखना होता है। श्रेष्ठ साधक मन्त्र लिखते समय अर्थ-चिन्तन भी करते चलते हैं। इसलिए जप की तुलना में मन्त्र लेखन को १० गुना श्रेष्ठ माना गया है।

(२) हजारों व्यक्ति ऐसे हैं जो धर्म-कृत्यों में रुचि तो रखते हैं, किन्तु बहुत व्यस्त रहने के कारण नियमित रूप से आधा-एक घण्टा समय जप करने के लिए नहीं निकाल पाते। ऐसे व्यक्ति मन्त्र-लेखन से सुविधानुसार ताल-मेल बैठा सकते हैं। उन्हें जब भी १० मिनट का तनाव-रहित समय मिले, तब वे एकाग्र मन से मन्त्र-लेखन कर लिया करें, और अपनी धर्म-रुचि को जीवन्त बनाए रखें।

(३) आप सद्‌बुद्धि प्रदान करने वाला गायत्री महामन्त्र लिखें, अथवा पंचाक्षरी गायत्री महामन्त्र लिखें। यदि आपका अपना कोई इष्ट मन्त्र हो, तो उसे ही लिखें। जो मन्त्र नहीं लिखना चाहें, वे अपना प्रिय भगवन्नाम लिखें।

कितना मन्त्र लेखन करें ?

(१) सामान्यत: ११ पंक्तियाँ मन्त्र-लेखन करें। अधिक चाहे जितना लिखें।

(२) किसी कारणवश ११ पंक्तियाँ नहीं लिख पाएँ, तो सुविधानुसार संख्या निश्चित कर लें। फिर नित्य उतनी पंक्तियाँ लिखा करें।

(३) 'नाम'-लेखन पूरी पंक्ति पर कीजिये (जैसे,'राम' लिखना है, तो पंक्ति में १६ या अधिक 'राम' लिखकर पंक्ति पूरी करें। ऐसी ११ पंक्तियाँ लिखें।)

मन्त्र-लेखन कब करें ?

(१) जब मन शान्त हो. और एकाग्र होने योग्य हो. तब लिखें। यह पहली शर्त है।

(२) कभी यात्रा पर जाएँ, तो पुस्तिका साथ ले जाएँ। वहाँ जब समय मिले तब मन्त्र-लेखन या नाम-लेखन किया कीजिये।

(३) जहाँ नौकरी-व्यवसाय करते हैं वहाँ भी एक मन्त्र-लेखन पुस्तिका रख लें। जब फुर्सत मिले और मन शान्त हो, तो वहाँ लिख लें।

२. देव-दर्शन (विवेचना)

१. देव-दर्शन का महत्त्व-

(१) हरे, सफेद और गेरुए रंग के कपड़ों का जोड़ मात्र सिला हुआ कपड़ा नहीं है, हमारा राष्ट्र-ध्वज है। उसका सम्मान राष्ट्र के सम्मान के बराबर है, इससे जरा भी कम नहीं है। राष्ट-ध्वज को देखकर राष्ट्र की गरिमा का भाव जाग उठता है।

ऐसे ही देव-प्रतिमा भी मात्र तराशा हुआ पत्थर नहीं है, सर्वसमर्थ-सर्वेश्वर की प्रतिनधि है। उसे देखकर सर्वेश्वर की गरिमा का स्मरण होना चाहिए। हृदय में श्रद्धा और आत्मीयता के भाव उमड़ना चाहिये।

(२) प्रत्येक देव-प्रतिमा सर्वेश्वर की ही किसी शक्ति की अभिव्यक्ति है। अतः उसमें ईश्वर का भाव रखते हुए श्रद्धा सहित दर्शन-नमन किया करिये। **श्रद्धा-भावना के साथ देव-दर्शन करना ही सार्थक होता है।**

२. कल्याणकारी प्रार्थनाएँ-

केवल मुख से दुहराई गई प्रार्थना नकली और बेअसर होता है। सच्ची प्रार्थना में सच्ची आकांक्षा होती है, हृदय से उठती है, तथा आत्म-कल्याण और सबके कल्याण के भाव से की जाती है। इसलिए जो अधिक भावनाशील हों, वे देव-दर्शन, नमन, जप करते समय निम्नांकित में से कोई एक कल्याणकारी प्रार्थना सत्य-भावना के साथ मानसिक रूप से अथवा बोलकर किया करें:—

(१) "प्रभु! आपकी यह मधुर मुस्कान मुझे याद आती रहे। दुःख और सुख दोनों में मुस्कराते रहने का साहस देती रहे।"

(२) "प्रभु! आपकी आँखों से झर रही करुणा मुझे याद आती रहे। मैं दुखियों के प्रति उदार बन सकूँ। राह-भटकों को अच्छाई की ओर मोड़ सकूँ।"

सोचने, सबका कल्याण करने की उमंग मुझमें जगाता रहे। ''

(४) ''प्रभु! आपका यह आभामय रूप मुझे याद आता रहे। मैं अपने को पवित्र बना सकूँ और आपकी आभा के एक अंश को पा सकूँ।''

(५) ''प्रभु! मैं ज्ञान और सेवा की आभा से भरा जीवन जी सकूँ। ज्ञान और सेवा की आभा से भरा जीवन जीने के लिए लोगों को प्रेरित कर सकूँ।''

३. देव-दर्शन के लाभ-

सही तरीके से देव-दर्शन करने पर निम्नांकित सत्परिणाम प्राप्त होते हैं-

(१) मंदिर-गुरुद्वारा में सात्विकता से भरा वातावरण रहता है। इसलिए वहाँ सद्विचारों और सद्भावनाओं को सहज ही अपने भीतर उभरने का अवसर मिलता है।

(२) ईश्वर की सर्वोच्चता का बोध होने से अपनी 'लघुता' अनुभव होती है, तो पद-प्रतिष्ठा का घमण्ड घटता है। धीरे-धीरे विनयशीलता बढ़ती है।

(३) भावनाशील व्यक्तियों में दुखी-असमर्थों के प्रति सेवा के भाव जगाते हैं।

३. स्वाध्याय (विवेचना)

१. ''स्वाध्याय'' क्या है?

(१) ''सत्साहित्य के अध्ययन-मनन-चिन्तन'' को स्वाध्याय क़हते हैं।

(२) ''मेरे विचारों में, व्यवहारों में, स्वभाव में कौन से दोष हैं, कौन से गुण हैं, अपने मन की परतों को उधेड़ कर इन दोषों और गुणों को निष्पक्ष दृष्टि से देखना'' -इसे भी स्वाध्याय कहते हैं।

२. स्वाध्याय का महत्त्व-

जो आत्मोन्नति करने की सच्ची आकांक्षा रखते हैं, वे नियमित स्वाध्याय करते हैं। अपने आप का सुधार करने की इच्छा स्वाध्याय करने से ही जागती है। अपने मन को नित्य उत्तम विचारों में ले जाने से अपने भीतर सोई पड़ी शक्तियों को जानने, जगाने और उपयोग में लाने का संकल्प उठता है। उत्तम कार्यों को करने की प्रेरणा मिलती है। अपने मन को एक ही कार्य पर, स्वाध्याय पर, टिकाए रखने से एकाग्रता का अभ्यास होता है, तो जप-ध्यान करने में भी जल्दी प्रगति होने

३. अध्ययन-मनन-चिन्तन करिये-

(१) जो सत्साहित्य पढ़ें, उसे समझते हुए ही पढ़ें। जो समझ में नहीं आए, उसे बार-बार पढ़ें जब तक कि वह भली प्रकार समझ मे न आ जाए। तभी तो आप उसका उपयोग कर सकेंगे। इसलिए पढ़ने की गति को धीमा रखना चाहिए। यह **अध्ययन है।**

(२) श्रद्धापूर्वक थोड़ा पढ़ना। पढ़े हुए की उपयोगिता पर विचार ज्यादा करना। ऐसा करने से पढ़ना सार्थक हो जाता है। यह **मनन** है।

(३) मनन करने पर जो बात सही और काम की लगे, उसे अपने जीवन से जोड़ने का पक्का मन बना लें, और उसे कब व कैसे उपयोग में लाएँगे, यह योजना बना लें। यह **चिन्तन** है।

४. अपने संकल्प का नित्य स्मरण करिये-

"एक दुर्गुण त्यागने-एक सद्गुण अपनाने" के अपने संकल्प को नित्य दुहराया करें। अपने मन में उठने वाली इच्छाओं पर, और किये गए कार्यों पर यह विचार करते रहा करें कि "जीवात्मा की उन्नति के लिए यह उचित था या अनुचित ?" नित्य ऐसा विचार करते रहने से विचार और कार्य धीरे-धीरे सुधरने लगते हैं।

५. प्रातःकाल इसे नित्य करिये -

निम्नांकित उपयोगी क्रिया नित्य प्रातःकाल किया करें:—

(१) प्रातः काल नींद खुलते ही लेटे-लेटे ईश्वर का स्मरण करें अथवा २-४ बार भगवन्नाम का उच्चारण करें । फिर हाथ हाथ जोड़कर प्रणाम करें।

(२) प्रणाम के बाद अपने संकल्प को मन में अथवा बोलकर इस प्रकार दुहराएँ- "मैं (अमुक) बुरा कर्म नहीं करूँगा (गी)। (अमुक) अच्छा कर्म जरूर करूँगा (गी)। प्रभु! मुझे शक्ति दीजिये।"

(३) - अब प्रसन्न मन से उठ जाएँ।

- "भूमि पर पैर रखने से पहले झुककर हाथों से उसे स्पर्श करें, माथे से लगाएँ और कहें-"जननी भारत भूमि नमोस्तुते"।

(४) इसी प्रकार रात्रि में सोने के पहले ईश्वर-इष्टदेव को साक्षी बनाकर दिन भर के क्रम की समीक्षा करें। उत्तम प्रयासों पर प्रसन्नता, तथा की गई

जीवन जीने का निश्चय करें, और ईश्वर के चरणों में सब कुछ समर्पित करते हुए निद्रा की गोद में चले जाएँ।

नित्य प्रात: यह क्रिया करने से मनोवृत्ति क्रमश: सुधरने लगती है।

५. कार्यकर्त्ता ध्यान दें -

(१) प्रात:काल की उपरोक्त उपयोगी क्रिया को सभी लोगों को समझाया करिये, और प्रतिदिन करने के लिए प्रोत्साहित किया कीजिये।

(२) जिन व्यक्तियों ने एक दुर्गुण त्यागने-एक सद्गुण अपनाने का संकल्प लिया है, उनसे प्राय: ही सम्पर्क किया करें। कुशल-क्षेम पूछने व सामान्य चर्चा करने के बाद शालीनतापूर्वक पूछें, "अपने संकल्प का निर्वाह कर रहे हैं न?" अधिकांश उत्तर 'नहीं' में या टालमटोल की भाषा में मिलेंगे। तब खीझिये नहीं। उतनी ही शालीनता के साथ संकल्प का निर्वाह करने के लाभ "पुण्य तथा स्वर्ग" की शब्दावली में समझाइये। "अब आरंभ कर दीजिये" ऐसा कहकर प्रोत्साहन ही दीजिये।

(३) **एक दुर्गुण त्यागें-एक सद्गुण अपनाएँ,** इसे व्यापक अभियान के रूप में अपने क्षेत्र में चलाने में यदि आप सफल हो सके, तो **नवसृजन के इस दैवी कार्य में आपका बहुत महत्वपूर्ण योगदान होगा। अत: आप इस अभियान के लिए विशेष रूप से क्रियाशील हों।**

४. संयम (विवेचना)

संयमित जीवन-सुखी जीवन

(१) आदिम युग में मनुष्य जंगलों में कष्टपूर्वक जीते थे, जो मन में आया वह करते थे। आज भी यदि सबको अपनी मनमानी करने दी जाए तो हमें उसी आदिम युग में वापिस पहुँचने में ज्यादा समय नहीं लगेगा। क्या हम इसे पसंद करेंगे?

कोई इसे पसंद नहीं करेगा। इसीलिये नदी पर बाँध, पेड़-पौधों की काट-छाँट और पशुओं पर लगाम लगाई जाती है, जिससे कि यह विश्व रहने का सुन्दर स्थान बना रह सके। मनुष्य के मन पर भी लगाम इसीलिये जरूरी है जिससे कि सभी मनुष्य और सभी प्राणी सुखपूर्वक जी सकें। इस लगाम का ही दूसरा नाम

संयम तो "तप" है। अपने ऊपर स्वयं अकुंश लगाना है। मन को विवेक के द्वारा पुचकार कर मनाना है, उसे उज्ज्वल दिशाओं की ओर मोड़ना है। अत: प्रगति के इच्छुकों को संयम की तप-साधना अवश्य जानना और करना चाहिये।

(२) संयम चार हैं। प्रत्येक संयम के साथ किसी "उत्तमता" को पाने का लक्ष्य जुड़ा है। जैसे, इन्द्रिय संयम-स्वस्थ शरीर। विचार संयम-स्वच्छ मन। अर्थ संयम-आत्म निर्भरता। समय संयम-जीवन का सदुपयोग और सभ्य सामाजिक वातावरण बनाने में सहयोग। **किस संयम को कैसी मानसिकता के साथ साधना चाहिये, यह सबसे महत्त्वपूर्ण जानकारी है जो प्रत्येक साधक को होना चाहिये।** अगले पृष्ठों पर प्रत्येक संयम के साथ यह जानकारी दी जा रही है।

४. (१) इन्द्रिय-संयम (विवेचना)

जीभ और जननेन्द्रिय के संयम प्रारंभ करने के लिये उपवास और ब्रह्मचर्य दो सरल अभ्यास हैं। जीवन और जीवात्मा के हित में इन्हें अवश्य साधना चाहिये।

४. (१)-१. उपवास (विवेचना)

शरीर को भोजन न दें, पर मन दिन भर खाने की चिन्ता करता रहे, यह उपवास नहीं है। जीभ भोजन नहीं चखे पर जीभ दिन भर तीखी-गंदी वाणी बोलती रहे, यह भी उपवास नहीं है।

तो उपवास क्या है ? (पाँच नियम)

(१) अभ्यास खण्ड में बताए गए तीन उपवासों में से कोई एक **उपवास** करें।

(२) मन को **शांत** बनाए रखें। उसे पवित्र विचारों व स्वाध्याय में लगाए रखें।

(३) वाणी **विनम्र** और मीठी बोलें।

(४) शरीर से **उत्तम कर्म** करें।

(५) दिन भर **प्रसन्न चित्त** रहें।

४. (१)-२. ब्रह्मचर्य (विवेचना)

उपवास और ब्रह्मचर्य का जोड़ा है, इसलिये दोनों को एक साथ साधना चाहिये। साधक यह तथ्य स्पष्ट रूप से जानें कि ब्रह्मचर्य केवल जननेन्द्रिय का संयम नहीं है। **विचारों और इच्छाओं पर भी संयम रखना आवश्यक है।**

इसलिये उपवास-ब्रह्मचर्य साधने के दिनः-

(१) काम-वासना संबंधी कर्म करना तो दूर, मन को भी वैसे विचारों से, वाणी को वैसे शब्दों से, और चित्त को वैसी इच्छाओं से दूर रखें।

(२) अश्लील पत्र-पत्रिकाओं और फिल्मों के प्रति विरक्त रहें। वृत्ति को सात्विक बनाए रखने में स्वास्थ्य-योग-धर्म संबंधी साहित्य का अध्ययन करते रहें।

(३) श्रेष्ठ व्यक्तियों के साथ तथा देवालय में कुछ समय बिताएँ।

(४) सेवा ब्रह्मचर्य को साधती है। इसलिए कोई सेवा-कार्य अवश्य करें।

इस प्रकार **ब्रह्म में अर्थात् उज्ज्वल विचार, भावना और कर्म में व्यस्त रहना ही वास्तविक ब्रह्मचर्य है।**

(५) सप्ताह में एक दिन ही नहीं, अधिक से अधिक समय तक ब्रह्मचर्य का पालन पति-पत्नि दोनों के लिये शारीरिक-मानसिक-नैतिक सभी दृष्टियों से हितकारी है। पति-पत्नि की परस्पर प्रीति शरीरों की निकटता से नहीं, मन और हृदय की निकटता से सिद्ध होती है।

४. (१)-३. उपवास और ब्रह्मचर्य संयमों के लाभ

(१) पाचन-क्रिया सुधरती है। शरीर शुद्ध होता है। मन शान्त रहता है।

(२) लम्बी आयु तक व्यक्ति स्वस्थ और बुढ़ापा दूर रहता है।

(३) तन और मन की शक्तियों की भयानक बर्बादी से सुरक्षा मिलती है।

(४) तन 'ओजस्वी' और मन 'तेजस्वी' बनता है।

(५) मन की चंचलता दूर रहती है, तो प्रभावी जप-ध्यान करते बनता है।

(६) व्यक्तिगत जीवन में कर्म-निष्ठा और सामाजिक जीवन में सेवा-भावना

४. (२) विचार संयम (विवेचना)

(१) हमारी प्रत्येक गतिविधि किसी विचार से जन्म लेती है। मन में जैसा विचार उठता है, वैसे ही कर्म हम करते हैं। और जैसे कर्म हम नित्य करेंगे वैसा ही हमारा स्वभाव-संस्कार बनता चला जाएगा। हमारा संस्कार ही जीवात्मा को या तो स्वर्ग के दिव्य प्रकाश में पहुँचाता है, या नर्क के घने अन्धकार में पटक देता है। अर्थात् **हमारे विचार ही हमारा भाग्य लिखते हैं। ईश्वर की यह सनातन व्यवस्था है।**

(२) ईश्वर के चित्र में सिर के पीछे उजला प्रकाशवान चक्र बनाया जाता है। यह उनके 'तेज' को प्रगट करता है। प्रत्येक मनुष्य के सिर के पीछे भी चक्र होता है, जिसे दिव्य-दृष्टि प्राप्त महापुरुष ही देख पाते हैं। यह चक्र हमारे मन के 'तेज' को दर्शाता है। हमारे विचार यदि गंदे होंगे तो हमारा चक्र धुँधला और बदरंग हो जाएगा। जैसे-जैसे हम विचारों को उजला बनाते जाएँगे, चक्र भी उज्ज्वल होता जाएगा, और उसी अनुसार हमारा भाग्य भी काला या उजला बनता जाएगा।

(३) इसलिये योगियों-महापुरुषों ने विचारों पर संयम रखने पर विशेष बल दिया है। विचारों को सदा उज्ज्वल बनाए रखने को 'पुण्य-कार्य' कहा है। अतः साधक यह करें-

(१) स्वाध्याय और श्रेष्ठ जनों के संग से उत्तम प्रेरणाएँ नित्य प्राप्त किया करें।

(२) सदैव श्रेष्ठ विचारों को ही मन में रखें और मन के 'तेज' को बढ़ाएँ। जीवात्मा की सद्गति का यह सबसे उत्तम उपाय है।

(४) **विचार संयम के लाभ-**

(१) विवेक धीरे-धीरे जागने लगता है। मन में तेजस्विता आने लगती है।

(२) व्यवहार में शालीनता आती है। सामाजिक प्रतिष्ठा भी बढ़ती है।

४. (३) अर्थ-संयम (विवेचना)

(१) मुण्डन तथा विवाह में धूमधाम, मृत्युभोज, वस्तुओं की अन्धाधुन्ध खरीददारी आदि फिजूलखर्चों के पीछे केवल दो प्रेरणाएँ काम करती हैं .... **राजसी-प्रथा की नकल, और अपनी धनवन्तता को जगजाहिर करने की चाह।**

यह प्रथाएँ और इच्छाएँ हानिकारक होते हुए भी सिर्फ इसलिये जीवित हैं,

है......... कभी मजबूरी मानकर, कभी प्रतियोगिता की भावना से। एक बंद कर दे तो दूसरे में भी बंद करने का उत्साह जागता है।

(२) आप अपने घर के मुखिया हैं। आपका फैसला ही आखरी फैसला है। **इसलिये सबसे पहले आप साहस कीजिये।** परिवार में मुण्डन-विवाह आदि के जब अवसर आएँ, तब इन **धर्म-कृत्यों को सादगी के साथ करने** की घोषणा अपने परिवार में करिये। **शान्त मन से किन्तु दृढ़ चित्त से घोषणा करिये।** परिवार वाले धीमे-धीमे कुछ टिप्पणी करेंगे, उस पर न ध्यान दीजिये, न विवाद करिये। शांत व दृढ़-चित्त बने रहिये। थोड़े समय में ही वे शान्त हो ज़ाएँगे।

यह निश्चित है कि ऐसा निर्णय करने से **समाज आपकी निंदा नहीं करेगा, क्योंकि बर्बादी के बोझ से सभी त्रस्त हैं।** यह भी निश्चित है कि आपके द्वारा प्रारंभ की गई इस नई और उपयोगी परम्परा से **कुछ और लोगों को प्रेरणा मिलेगी।** वे भी आपके समान साहस करने लगेंगे। इस प्रकार सदियों से चलती चली आ रही फिजूलखर्ची की हानिकारक परम्परा धीरे-धीरे समाप्त होगी। **इस प्रकार आपका यह साहस समाज का पथ-प्रदर्शक बन जाएगा।**

(३) फिजूलखर्ची से बचना कंजूसी नहीं है। कंजूसी भी उतनी ही हानिकारक है जितनी फिजूलखर्ची है। अत: व्यर्थ की बर्बादी से बचे धन के एक अंश को उदारतापूर्वक और नियमित रूप से सत्कार्यों में लगाते रहिये। यह उदारता समाज और धर्म के लिये जितनी कल्याणकारी और प्रेरणाप्रद होगी, उससे कहीं अधिक आपकी आध्यात्मिक प्रगति में सहायक होगी। यदि व्यसन, फैशन, अपव्यय आदि से धन बचा कर उसे सत्कार्यों में लगाने वाली ''अर्थ-संयम'' की साधना का आप अभ्यास करने लगें, तो परिवार एवं समाज के हर श्रेष्ठ कार्य के लिए पर्याप्त अर्थ-साधन जुटने लगेंगे।

४.(४) समय-संयम (विवेचना)

(१) ईश्वर ने मनुष्य को दो सबसे बड़ी सम्पदाएँ-विवेक और समय-देकर पृथ्वी पर भेजा है, जिससे कि वह इस सर्वश्रेष्ठ योनि के लिए उपयुक्त कार्यों को **समय-सीमा के भीतर** पूरा करके वापिस लौटे।

किन्तु यदि हम अपने दिन भर के कार्यों की ईमानदारी से समीक्षा करें तो हमें आश्चर्य होगा कि विवेक को एक ओर हटाकर हम इतना अधिक समय व्यर्थ के

अंतहीन भण्डार है। ईश्वर द्वारा दी गई इन सम्पदाओं -विवेक और समय- का कदाचित् हम वह उपयोग नहीं कर रहे हैं, जिसकी हमसे आशा की गई थी।

(२) मनुष्य की आयु बहुत लम्बी नहीं होती। ६०-७० वर्षों की छोटी-सी जीवन अवधि में ही हमें अपने विचार, कर्म और संस्कारों को सुधारना और उज्ज्वल कर लेना है। जीवात्मा की सद्गति के लिये सद्भावों की पर्याप्त पूँजी कमा लेना है। सद्भावों को सत्कार्यों में ढालकर दुखी-असमर्थ की, और राह से भटक गए मनुष्यों की सेवा भी कर लेना है। इसलिये **समय पर पकड़ रखना आवश्यक है।**

(३) बीता हुआ समय दुबारा प्राप्त नहीं होता। इसलिये जो व्यक्ति मिले हुए समय का महत्त्व समझते हैं, वे ६०-७० वर्षों से भी कम आयु की अवधि में उतना कार्य कर जाते हैं जो अनेक व्यक्ति मिलकर भी नहीं कर पाते। आद्य शंकराचार्य और श्रीराम शर्मा आचार्य जी इसके प्रत्यक्ष उदाहरण रहे हैं। **जीवन का अर्थ है समय। जो जीवन से प्यार करते हैं, वे आलस्य में समय नहीं गँवाते, क्योंकि आलस्य से अधिक घातक और अधिक समीपवर्ती शत्रु दूसरा नहीं है।**

समय का सद्व्यय करें- अनावश्यक कार्यों से बचाए गए समय को तत्काल उपयोगी कार्यों में लगा दीजिये, अन्यथा वह भी बेकार चला जाएगा।

खाली समय को स्वाध्याय द्वारा उत्तम विचारों का संग्रह करने में, सद्गुणों का अभ्यास करने में, और सेवा-सत्कार्यों में लगाया करें। इसी में बुद्धिमानी है।

५. सेवा (विवेचना)

(१) ''परहित सरिस धरम नहि भाई''। कष्ट और असमर्थता से भरा जीवन जी रहे व्यक्तियों की **पीड़ा का निवारण करने,** और व्यक्तियों को **मानसिक एवं बौद्धिक पतन से बचाने** का सेवा-व्रत धर्म का सबसे ऊँचा स्वरूप है।

(२) मानव-जीवन धारण करने का यही उद्देश्य है। मनुष्य ईश्वर की महानता को समझे और अपनी लघुता को स्वीकारे। मनुष्य ईश्वर की इच्छा को समझे और विनम्र बनकर सेवा-व्रत को धारण करे। मनुष्य अपनी सामर्थ्य भर दु:खियों की पीड़ा को दूर करे, और राह-भटकों को जीवन जीने की सही राह दिखाए। ऐसी सेवा मोक्ष का द्वार है।

(३) प्रभु का सेवक वह है जो सेवा करने का अहंकार नहीं करता, और सेवा की आड़ में अपना स्वार्थ नहीं साधता। यही वास्तविक सेवा है।

धर्म का व्यावहारिक रूप सेवा ही है।

५. (१). देवालय सेवा (सुविधा-संवर्द्धन)

(विवेचना)

(१) अपनी पद-प्रतिष्ठा के कारण देवालय सेवा करने में लज्जा का अनुभव कभी न करें। आप कितने ही ऊँचे स्तर के हों, भगवान से तो छोटे ही हैं। इसलिये प्रसन्नतापूर्वक सेवा करें, और सेवा के बाद संतोष का अनुभव करें। तब मानें कि सेवा की।

(२) **''भगवान मेरी माता भी हैं, पिता भी हैं'' यह श्रद्धा भाव हो,**
''उत्तम संतान मातृभक्त और पितृभक्त होती है'' यह आत्मीय भाव हो।
ऐसी श्रद्धा और आत्मीयता के साथ देवालय-सेवा करें। यह वास्तविक सेवा है। ऐसी सेवा ही भगवान् स्वीकारते हैं।

(३) वास्तविक सेवा का सत्परिणाम शीघ्र ही दिखाई पड़ता है। भक्ति का सही स्वरूप समझ में आने लगता है। सच्ची आस्तिकता का विकास होता है। अहंकार टूटता है। सबके प्रति **समता** का भाव जागता है।

सेवक वह है जो सेवा करने का अहंकार नहीं करता, और सेवा की आड़ में अपना स्वार्थ नहीं साधता। ऐसी सेवा मोक्ष का द्वार है।

देवालय-सेवा कब करें ?

(१) जब भी देव-दर्शन के लिये जाएँ, तब कोई न कोई सेवा अवश्य करें। स्वयं ढूँढें कि उस समय कौन सी सेवा की जा सकती है।

(२) देवालय में पर्व मनाने अथवा ''जन-जागरण'' संबंधी गतिविधियाँ चल रही हों, तब विशेष रूप से सहयोग किया करें।

५. (२). मानव-सेवा (पीड़ा-निवारण)

(विवेचना)

(१) मानव-शरीर भी भगवान का मंदिर है। इसलिये देवालय-सेवा के समान, पीड़ित और असमर्थ की सेवा भी श्रद्धा और आत्मीयता के साथ ही करना चाहिये।

भगवान ने मनष्य को एक ही तो कर्त्तव्य सौंपा है-'सेवा'। जब करुणा

साधक को ईश्वर की निकटता का अनुभव होता है। परायी पीर को जानने-समझने वाला ही 'वैष्णव जन' है, भगवान् को प्रिय है। **भगवान की करुणा और उदारता वही पाता है जो स्वयं वैसी करुणा-उदारता के साथ पीड़ित-असमर्थ की सेवा करता है।** इस ईश्वरीय व्यवस्था को समझना चाहिये, और अपनी सामर्थ्य भर मानव-सेवा करना चाहिये, पीड़ा का निवारण करना चाहिये।

(२) इसलिये अहंकार से भरकर या खीझते हुए सेवा का ढौंग कभी न करें। यह पाप है, बिल्कुल अनुचित है।

(३) जब भी करें जितनी भी करें, सहृदय और विनम्र भाव से ही सेवा करें। कभी किसी कारणवश न कर पाएँ तो शान्त वाणी से असमर्थता बता दें।

५.(३). राष्ट्र-सेवा (विवेचना)

(१) स्वामी विवेकानंद जी के मद्रास में दिये गए एक प्रवचन के इस सार-सारांश पर ध्यान दीजिये "इस पृथ्वी पर केवल भारत ही कर्मभूमि है। यहाँ सेवा, सहयोग और सत्कर्म करके मनुष्य उच्च देव-योनि अथवा मोक्ष की ओर बढ़ सकता है। बाकी के देश भोग-भूमि हैं। इसलिये जिन्हें मोक्ष की ओर बढ़ना है, उन्हें अच्छे संस्कार विकसित कर पहले भारत में जन्म लेना होगा, या भारत की दिव्य भूमि से और उसकी संस्कृति से समरस होना होगा। मोक्ष का मार्ग भारत से हो कर जाता है। अन्य कोई मार्ग नहीं है।" सिद्ध पुरुष स्वामी विवेकानन्द के यह आप्त वचन हैं। उनके इस रहस्योद्‌घाटन से हमें **भारत की महानता का बोध** होता है।

(२) यह भारत भूमि पृथ्वी के अन्य देशों से भिन्न है। किसी भी अन्य देश के पास सर्वकल्याणकारी संस्कृति, देव-संस्कृति का जनक दिव्यात्मा हिमालय, कभी खराब नहीं होने वाले जल से भरी-पूरी त्रिलोकपावनी गंगा नहीं है। किसी भी राष्ट्र के पास मन-बल से छलछलाते, मातृ-भूमि की रक्षा में शहीद होने के लिये आतुर होने वाले फौजी जवान और फौजी कन्याएँ नहीं हैं। देश-धर्म-संस्कृति की निस्वार्थ सेवा करने के लिये अपने घरों की सुविधा को छोड़कर ग्राम-ग्राम और नगर-नगर फेरी लगाने वाले अनगिनत समाज-सेवक केवल भारत ने ही उपजाए हैं। यह तो विज्ञान, योग, शिल्प, गणित आदि की जन्मभूमि है। **यह हमारी मातृ-भूमि है।**

(३) हम भाग्यवान हैं कि इस दिव्य भारत भूमि पर हमने जन्म लिया है। पर

हमारे लिये अभी शेष है। यहाँ जन्म लेकर इन तीन कर्मों से यदि हम जी चुराते रहे, तो इससे अधिक और क्या दुर्बुद्धि व दुर्भाग्य हमारा हो सकता है! उच्च देव-योनि अथवा मोक्ष प्राप्त करने का हाथ में आया अवसर यों ही गँवा देना क्या हमारे लिये उचित होगा?

(४) आज हमारी जन्मभूमि और संस्कृति दोनों पर चारों ओर से आक्रमण हो रहे हैं। आर्थिक स्वतन्त्रता, अखण्डता और सम्प्रभुता पर घात की जा रही है। तृष्णा और वासना को भड़काने वाली पश्चिम की चमकीली राक्षसी-संस्कृति अजगर के समान मुँह फैलाकर हमारी त्यागमयी देव-संस्कृति को निगलती जा रही है। बाहर से आक्रमण तो हो ही रहे हैं, घर के भीतर भी देशद्रोही और संस्कृति द्रोही मातृ-भूमि की गरिमा को नीचे कर रहे हैं। पद, सत्ता और धन पाने का लोभ सुरसा के समान बढ़ता जा रहा है। कर्त्तव्य के प्रति उपेक्षा और आलस्य स्वभाव में समा गया है। कुल मिलाकर, हम भूलते जा रहे हैं कि यह दिव्य भारत हमारी मातृ-भूमि है, कि हम भारतीय हैं, कि हमारी अपनी एक संस्कृति है, कि इस मातृ-भूमि के प्रति हम उसके बालक-बालिकाओं का भी कोई कर्त्तव्य है। दूसरे देश हमारी इस माँ को नोचें और आहत करें, तो रोष नहीं आना चाहिये क्या? हम स्वयं अपनी माँ को संस्कृति-विहीन, अर्थात वस्त्र-विहीन करने लगें, तो लज्जा नहीं आना चाहिये क्या? ....**कब आयगा हमें यह रोष और यह लज्जा?**

(५) भारत में जीने के लिये मिला यह जन्म और यह समय हमारे लिए बहुत मूल्यवान है। युग-परिवर्तन का समय आरम्भ हो चुका है। अत: इस जीवन के रहते और समय रहते हम चेत जाएँ, तो अच्छा हो। **मातृ-भूमि की और देव-संस्कृति की निस्वार्थ सेवा के माध्यम से सहज ही उच्चतर देव-योनि और मोक्ष की ओर, आइये, हम अपने कदम बढ़ाएँ।**

५.(४). महाकाल-सेवा (पतन-निवारण)

(विवेचना)

(१) वर्तमान युग कष्टों और तनावों का युग है। व्यक्ति और सम्प्रदायों से लेकर विश्व भर के राष्ट्र आपस में टकरा रहे हैं। इन सब कष्टों-अभावों के अलग-अलग कारण गिनाए जा सकते हैं। किन्तु इन सब कारणों का एक 'मूल

तपोनिष्ठ- पं. श्रीराम शर्मा जी आचार्य ने यह मूल कारण **अज्ञान** कहा है।

(२) अज्ञान क्या है? यह अज्ञान कि लोग नहीं जानते कि उन्हें यह मानव-जीवन किसलिये मिला है। लोग इसे जानते नहीं, इसलिये उसके अनुरूप जीवन जीते नहीं, पशुवृत्ति से जीवन जीते हैं। . . . . . '' सब कुछ मेरे लिये। सबसे पहले मेरे लिये। दूसरे की चिंता मत करो। जिस किसी भी उपाय से मिले प्राप्त करो। आगे क्या होगा, यह मत सोचो।'' इस नीति पर मनुष्य जीवन जिये जा रहा है, और राष्ट्र सरपट दौड़ रहे हैं।

यह मूल अज्ञान है। समस्त कष्टों-अभावों के मूल में यह अज्ञान ही पाया जाता है। जब तक यह मूल अज्ञान बना रहेगा, तब तक कष्ट और अभाव नहीं मिटेंगे. . . . न व्यक्ति के, न मानव जाति के।

(३) **तो क्या करें?** पिछले ६० वर्षों से आचार्य जी अपनी लेखनी-वाणी-कर्तृत्व से लोगों को इस एक प्रश्न का ही उत्तर बताते-समझाते रहे कि **''अज्ञान मरेगा सद्‌बुद्धि से, समूह-भावना से। अज्ञान से उत्पन्न आसुरी वृत्तियाँ और आसुरी कर्म जलेंगे ज्ञान की असंख्य ज्वालाओं से। इसलिये जन-जन के मन में इस ज्वाला को चैतन्य करो। प्रज्ञा-सन्तानो! ज्ञान-यज्ञ करो।''**

(४) इस युग के अधिपति भगवान महाकाल हैं। अज्ञानी मानव के द्वारा निर्मित की गई विनाश की परिस्थितियों का ध्वंस उन्हीं के निर्देश से सम्पन्न हो रहा है।

इसलिये ज्ञान-यज्ञ ही महाकाल की सेवा है।

अतः अपनी सम्पूर्ण सामर्थ्य लगाकर ज्ञान-यज्ञ कीजिये और महाकाल का आशीष व संरक्षण पाइये।

॥ समाप्त ॥

मूल्य- ८ रुपये

सम्पर्क सूत्र- गायत्री परिवार-युग निर्माण योजना का स्थानीय केन्द्र अथवा
शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार - २४९४११ (उत्तरांचल)
फोन : ०१३३४-२६०६०२

प्रकाशक तथा मुद्रक :- युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा

हमारा युग निर्माण सत्संकल्प

१-हम ईश्वर को सर्वव्यापी, न्यायकारी मानकर उसके अनुशासन को अपने जीवन में उतारेंगे।

२-शरीर को भगवान का मंदिर समझकर आत्मसंयम और नियमितता द्वारा आरोग्य की रक्षा करेंगे।

३-मन को कुविचारों और दुर्भावनाओं से बचाए रखने के लिए स्वाध्याय एवं सत्संग की व्यवस्था रखे रहेंगे।

४-इंद्रिय संयम, अर्थ संयम, समय संयम और विचार संयम का सतत अभ्यास करेंगे।

५-अपने आपको समाज का एक अभिन्न अंग मानेंगे और सबके हित में अपना हित समझेंगे।

६-मर्यादाओं को पालेंगे, वर्जनाओं से बचेंगे, नागरिक कर्त्तव्यों का पालन करेंगे और समाजनिष्ठ बने रहेंगे।

७-समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी को जीवन का एक अविच्छिन्न अंग मानेंगे।

८-चारों ओर मधुरता, स्वच्छता, सादगी एवं सज्जनता का वातावरण उत्पन्न करेंगे।

९ अनीति से प्राप्त सफलता की अपेक्षा नीति पर चलते हुए असफलता को शिरोधार्य करेंगे।

१०-मनुष्य के मूल्यांकन की कसौटी उसकी सफलताओं, योग्यताओं एवं विभूतियों को नहीं, उसके सद्विचारों और सत्कर्मों को मानेंगे।

११ दूसरों के साथ वह व्यवहार नहीं करेंगे, जो हमें अपने लिए पसंद नहीं।

१२-नर-नारी के प्रति परस्पर पवित्र दृष्टि रखेंगे।

१३ संसार में सत्प्रवृत्तियों के पुण्य प्रसार के लिए अपने समय, प्रभाव, ज्ञान, पुरुषार्थ एवं धन का एक अंश नियमित रूप से लगाते रहेंगे।

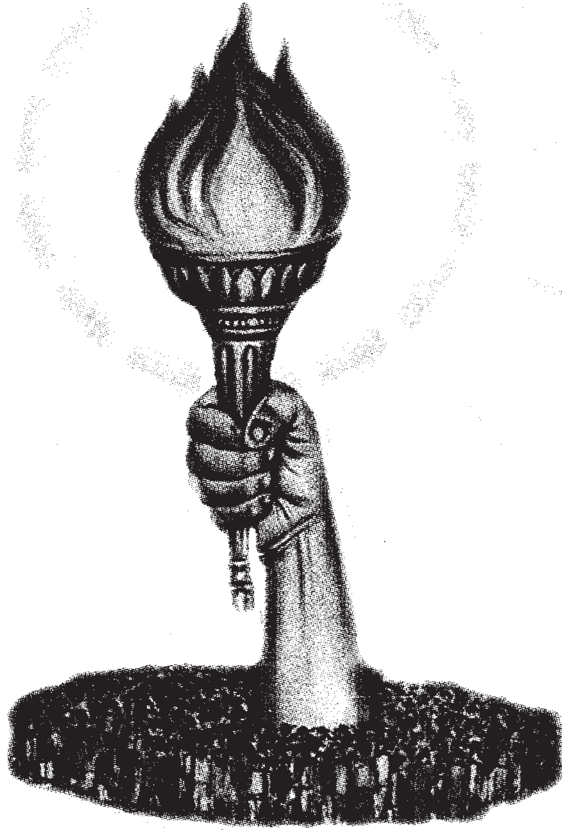
१४ परंपराओं की तुलना में विवेक को महत्त्व देंगे।

१५ सज्जनों को संगठित करने, अनीति से लोहा लेने और नवसृजन की गतिविधियों में पूरी रुचि लेंगे।

१६ राष्ट्रीय एकता एवं समता के प्रति निष्ठावान रहेंगे। जाति, लिंग, भाषा, प्रांत, संप्रदाय आदि के कारण परस्पर कोई भेदभाव न बरतेंगे।

१७ मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है, इस विश्वास के आधार पर हमारी मान्यता है कि हम उत्कृष्ट बनेंगे और दूसरों को श्रेष्ठ बनाएँगे, तो युग अवश्य बदलेगा।

''हम बदलेंगे-युग बदलेगा'' ''हम सुधरेंगे-युग सुधरेगा'' इस तथ्य पर हमारा परिपूर्ण विश्वास है।



विचारक्रांति अभियान